ISSN : 2454-1133

अनुग्रह ज्योति

2021

ए.एन. कॉलेज, पटना

तृतीय चक्र, श्रेणी 'ए' – राष्ट्रीय मूल्यांकन एवं प्रत्यायन परिषद् (नैक) द्वारा पुनर्मूल्यांकित
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यु.जी.सी.) द्वारा 'विशिष्ट' महाविद्यालय के रूप में रेखांकित

पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना

BOOK

ए. एन. कॉलेज, पटना
बिहार दिवस आयोजन

बिहार विभूति
डॉ. अनुग्रह नारायण सिंह

तुम बिहार के गौरव–गरिमा, तुम थे देव महान
हे बिहार के निर्माता, लो शत–शत प्रणाम।।

करो अनुग्रह हे नारायण,
ज्ञान की ज्योति जले...!
भासित अन्तर्मन जन-जन का,
जगमग जग कर दे ऽ ऽ...!
करो अनुग्रह ...!

आत्म विश्वास से भरा हृदय हो,
कर्म-धर्म हो, दया, विनय हो।
सत्य बने संबल जीवन का
ऐसा मन कर दे ऽ ऽ ऽ...!
करो अनुग्रह ...!

ऊँच नीच का भेद नहीं हो
स्वस्थ तन, अनुशासित मन हो,
विजयी हो संघर्ष हमारा
बाधा सब हर ले ऽ ऽ ऽ
करो अनुग्रह ...!

ISSN : 2454-1133

अनुग्रह ज्योति

2021

संरक्षक

प्रो. एस.पी.शाही, प्रधानाचार्य

प्रधान संपादक

प्रो. कलानाथ मिश्र

संपादक

डॉ. रत्ना अमृत

संपादक मंडल

- प्रो. अजय कुमार
- प्रो. नरेन्द्र कुमार
- डॉ. हिना तब्बसुम
- डॉ. संजय कुमार सिंह
- डॉ. विद्याभूषण

फागू चौहान
PHAGU CHAUHAN

सत्यमेव जयते

राज्यपाल, बिहार
GOVERNOR OF BIHAR

राजभवन
पटना–800 022
RAJ BHAWAN
PATNA - 800022

25 मई, 2021

संदेश

यह जानकार अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि अनुग्रह नारायण महाविद्यालय, पटना, 18 जून, 2021 को अपना 65वाँ स्थापना दिवस, कॉलेज के ऑनलाईन प्लेटफॉर्म पर मनाने जा रहा है एवं इस अवसर पर महाविद्यालय की वार्षिक पत्रिका 'अनुग्रह ज्योति' का प्रकाशन भी होने जा रहा है।

इस महाविद्यालय की स्थापना महान स्वतंत्रता सेनानी एवं बिहार के प्रथम उप मुख्यमंत्री–सह–वित्त मंत्री डॉ. अनुग्रह नारायण सिंह के नाम पर की गई थी एवं इनकी 134वीं जयन्ती के अवसर पर इस समारोह का आयोजन किया जा रहा है।

आशा है, समारोह एवं पत्रिका से लोग अनुग्रह बाबू के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से अवगत होकर प्रेरणा ग्रहण करेंगे तथा महाविद्यालय की विभिन्न गतिविधियों एवं अकादमिक गतिविधियों से परिचित हो सकेंगे। साथ ही, विद्यार्थियों को अपनी लेखन प्रतिभा के प्रदर्शन का अवसर भी मिलेगा।

स्थापना दिवस समारोह एवं पत्रिका के प्रकाशन से जुड़े हुए सभी महानुभावों को साधुवाद एवं इनकी सफलता हेतु हार्दिक मंगलकामनाएँ।

फागू चौहान

Phone : 0612-2786100-107, Fax : 0612-2786178
e-mail : governorbihar@nic.in

मुख्य मंत्री
बिहार

बिहार सरकार

पटना
दिनांक : 07.06.2021

संदेश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हो रही है कि दिनांक 18 जून, 2021 को बिहार विभूति अनुग्रह नारायण सिन्हा के 134वीं जयन्ती के अवसर पर ए॰ एन॰ कॉलेज, पटना द्वारा अनुग्रह जयन्ती–सह–स्थापना दिवस समारोह महाविद्यालय में ऑनलाईन डिजिटल प्लेटफॉर्म पर मनाया जाएगा। इस अवसर पर महाविद्यालय की वार्षिक पत्रिका 'अनुग्रह ज्योति–2021' का लोकार्पण भी प्रस्तावित है।

1956 में बिहार के प्रथम उप–मुख्यमंत्री सह वित्त मंत्री, बिहार विभूति अनुग्रह नारायण सिन्हा के नाम पर स्थापित महाविद्यालय का इतिहास गौरवशाली माना जाता है। मुझे विश्वास है, महाविद्यालय निष्ठावान एवं उत्कृष्ट शिक्षाविदों की नेतृत्व क्षमता एवं कर्तव्यनिष्ठा का उपयोग कर अपने स्थापना के उद्देश्यों को फलीभूत करने में अग्रणी भूमिका निभाने हेतु तत्पर रहेगा। मैं उन सभी भाषा प्रेमी प्राध्यापकों एवं सृजनधर्मी विद्यार्थियों के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने अपनी निष्ठा एवं भाषा प्रेम का परिचय देते हुए पत्रिका प्रकाशन के पुनित कार्य को सम्पन्न किया। आशा है, प्रकाश्य पत्रिका महाविद्यालय की गरिमा के अनुकूल ज्ञानवर्द्धक होगी, जिससे शिक्षार्थी, शिक्षणगण एवं अभिभावकगण महाविद्यालय के शैक्षणिक गतिविधियों, अकादमिक उपलब्धियों, वर्तमान चुनौतियों एवं भावी योजनाओं से पूर्णरूपेण अवगत होकर लाभ उठायेंगे।

मैं महान विभूति के प्रति श्रद्धासुमन अर्पित करते हुए विद्यार्थियों के उज्जवल भविष्य तथा अनुग्रह जयन्ती–सह–स्थापना दिवस समारोह के सफल आयोजन तथा पत्रिका के प्रकाशन एवं उसकी उपयोगिता हेतु शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

(नीतीश कुमार)

तारकिशोर प्रसाद
उप मुख्यमंत्री
बिहार

बिहार सरकार

पुराना सचिवालय
पटना – 800 015
Old Secretariat
Patna - 800 015
0612–2217894 (का॰)
0612–2217398 (आ॰)
0612–2217639 (फैक्स)

पत्रांक : 255 / आ॰

दिनांक : 24.05.21

संदेश

18 जून 2021 को बिहार विभूति अनुग्रह नारायण सिंह की 134वीं जयंती के अवसर पर उन्हें श्रद्धा नमन् करते हैं। बिहार की रत्नगर्भा भूमि ने जिन राष्ट्रीय व्यक्तित्वों का सृजन किया उसमें डॉ. अनुग्रह नारायण सिंह अग्रणी पंक्ति के राष्ट्रनायकों में शामिल रहे हैं। आधुनिक बिहार के सृजन के सूत्रधार अनुग्रह बाबू बिहार के आधुनिक इतिहास का अभिन्न अंग रहे हैं।

मुझे अत्यंत प्रसन्नता है कि अनुग्रह बाबू की जयंती के सुअवसर पर अनुग्रह नारायण महाविद्यालय अपना 65वाँ स्थापना दिवस मना रहा है एवं इस अवसर पर महाविद्यालय ने **'अनुग्रह ज्योति'** पत्रिका के प्रकाशन करने का निर्णय लिया है। ए. एन. कॉलेज ने अपने स्थापना काल से ही उच्च शिक्षा के साथ–साथ विद्यार्थियों के बहुमुखी प्रतिभा के विकास हेतु सफलतापूर्वक नित्य नए प्रतिमान को स्थापित किया है।

मुझे आशा है कि इस अवसर पर प्रकाश्य पत्रिका **'अनुग्रह ज्योति'** सुधि पाठकों के लिए उपयोगी एवं ग्राह्य होगी।

शुभकामनाओं के साथ...

(तारकिशोर प्रसाद)

विजय कुमार चौधरी
मंत्री
शिक्षा विभाग
बिहार सरकार, पटना

बिहार सरकार

Vijay Kumar Chaudhary
Minister
Education Department
Government of Bihar, Patna

पत्रांक : M-252

दिनांक : 01.06.2021

संदेश

हर्ष का विषय है कि दिनांक 18 जून 2021 को ए.एन.कॉलेज, पटना द्वारा अनुग्रह जयंती–सह–स्थापना दिवस समारोह का आयोजन किया जा रहा है।

यह संस्थान आधुनिक बिहार के निर्माताओं में से एक एवं महान स्वतंत्रता सेनानी के साथ बिहार के प्रथम उप–मुख्यमंत्री–सह–वित्त मंत्री, अनुग्रह बाबू के नाम पर स्थापित है। इस वर्ष अनुग्रह बाबू की 134वीं जयंती के अवसर पर हम उन्हें अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

ए.एन.कॉलेज, पटना का शिक्षा जगत में एक विशिष्ट स्थान रहा है। प्रसन्नता की बात है कि कॉलेज के 65वीं स्थापना दिवस के अवसर पर कॉलेज की वार्षिक पत्रिका 'अनुग्रह ज्योति' 2021 का भी प्रकाशन होने जा रहा है। आशा है यह पत्रिका कॉलेज विभिन्न गतिविधियों, अकादमिक उपलब्धियों एवं महत्वपूर्ण आलेखों से परिपूर्ण होगी।

मैं इस संस्थान के छात्र/छात्राओं के उज्ज्वल भविष्य के साथ समारोह के सफल आयोजन एवं पत्रिका के सफल प्रकाशन के लिए हार्दिक शुभकामनाएँ देता हूँ।

1/6/2021

(विजय कुमार चौधरी)

कार्यालय : विकास भवन, नया सचिवालय, बिहार पटना
दूरभाष : 0612–2204904 (का.), फैक्स : 0612–2215836, मो. : +91–9534099997
ई–मेल : ministereducation0099@gmail.com

अशोक चौधरी
मंत्री
भवन निर्माण विभाग
बिहार सरकार, पटना

बिहार सरकार

: 0612-2547640 (का.)
: 0612-2217234 (आ.)
: 0612-2547629 (फै.)

आवास :
2, पोलो रोड, पटना

पत्रांक : 55 (आ.)

दिनांक : 24.05.2021

संदेश

यह हर्ष का विषय है कि बिहार विभूति अनुग्रह नारायण सिंह के नाम पर स्थापित अनुग्रह नारायण महाविद्यालय उनकी 134वीं जयंती के अवसर पर दिनांक 18 जून को अपना 65वां स्थापना दिवस मना रहा है।

इस महाविद्यालय का गरिमामयी इतिहास रहा है। मेरी अपेक्षा है कि वर्तमान प्रबंधन, महाविद्यालय के सर्वांगीण विकास हेतु हमेशा तत्पर रहेगा एवं इस अवसर पर वार्षिक पत्रिका **'अनुग्रह ज्योति'** में कॉलेज के प्राध्यापकों, छात्र/छात्राओं की रचना का प्रकाशन उनके लिए उत्साहवर्द्धक एवं सभी के लिए ज्ञानवर्द्धक होगा।

इस लोकार्पण जयन्ती–सह–स्थापना दिवस के पावन अवसर पर महाविद्यालय के प्रधानाचार्य, समस्त परिवार एवं विद्यार्थियों को मेरी ओर से हार्दिक बधाई।

शुभकामनाओं के साथ!

अशोक चौधरी

कार्यालय : प्रथम तल, विश्वेश्वरैया भवन, बेली रोड, पटना–800 015

PATLIPUTRA UNIVERSITY

PATNA-800 020

Prof. Surendra Pratap Singh
Vice-Chancellor

E-mail : patliputrauniversity2018@gmail.com
: vc@ppu.ac.in
Website : www.ppup.ac.in

संदेश

यह अत्यंत ही प्रसन्नता का विषय है कि बिहार विभूति अनुग्रह बाबू की 134वीं जयंती के अवसर पर नैक द्वारा प्रत्यायित 'ए' ग्रेड ए. एन. कॉलेज, पटना अपने 65वें स्थापना दिवस पर अपनी वार्षिक पत्रिका **'अनुग्रह ज्योति'** (आई. एस. एस. एन. : 2454–1133) 2021 का प्रकाशन करने जा रहा है। पत्रिका का लोकार्पण दिनांक 18 जून, 2021 को ऑनलाइन प्लेटफॉर्म द्वारा किया जाएगा। इस पत्रिका में महाविद्यालय के द्वारा आयोजित अनेक शैक्षिक गतिविधियों को समाहित किया गया है। कॉलेज के प्राध्यापकों और छात्र–छात्राओं के द्वारा प्रकाशित आलेख महत्वपूर्ण हैं।

इस अवसर पर मैं प्रधानाचार्य एवं संपादन मंडल के सभी सदस्यों को मंगलकामनाएं प्रेषित करता हूँ।

(सुरेन्द्र प्रताप सिंह)
कुलपति
पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना

Editorial

The touch point of our daily lives have been dramatically different from 2020 as the Covid-19 Pandemic swept the globe, lending a surreal quality to the lives of millions of people. The ongoing Corona Virus Pandemic has led to social and economic disruption globally. Education sector has been no exception. There is change, adaptation, adoption and evolvement even in the world of education. However, this challenge posed by the Pandemic has forced us to innovate inorder to sustain.

Since last year we shifted to online mode of teaching and it has given us opportunity to adopt technology in education. A.N. College is one of the torch bearers in starting online academic activities, be it Student Development Programmes, Faculty Development Programmes, Online Quiz, Natural Webinar, Web Lectures. As we moved to 2021, online mode continued to be an integral part of education. The Establishment Day last year was celebrated online due to the Pandemic.This year also due to the second wave of Pandemic the Establishment Day is again being celebrated online.

Even in these challenging circumstances we are able to bring out this edition of "Anugrah Jyoti". "Anugrah Jyoti" is a tribute and offering in the memory of the great visionary leader Bihar Vibhuti, Sri Anugrah Babu – a multi-faceted personality, whose contribution to the society becomes more and more relevant with each passing day.

We are very thankful to all those who have contributed in bringing out this edition of the magazine in such difficult times. The magazine has been an expression of sentiments and emotions of teachers, staff and students of the college. It is a platform to exhibit their literary skills and innovative ideas. The essential purpose of the magazine is to inform, engage, inspire and entertain a diverse readership by presenting articles, stories and poems from our talented teachers, staff and students.

We are thankful to our respected Principal for entrusting us with the responsibility of editing. We take this opportunity to thank all the dignitaries for sparing their valuable time to send their best wishes for the magazine in the form of 'Messages'. We heartily wish all the readers our best wishes and hope this magazine will enjoy your critical acclaim. Shortcomings, if any, are our responsibility.

"Nothing in life is to be feared, it is only to be understood. Now is the time to understand more, so that we may fear less." – Marie Curie

Dr. Ratna Amrit
Editor

Prof. Kalanath Mishra
Sr. Editor

Principal's Desk

This is a special day when the entire A.N. College family has a chance to reflect not only the beginnings of the College and its founders, but also on the significant development since the College's inception.

It is a day set aside to celebrate our history and revisit and reconnect with the continuing journey of the College. We celebrate that we are blessed with such beautiful surroundings and wonderful facilities. We celebrate the joy of learning as we develop in mind, body and spirit, and we celebrate the bond that we share with past and present members of the A.N. College Family.

18th June, 2021 marks the 134th birth anniversary of AnugrahBabu and also the 65th Establishment Day of A.N.College.The college was founded in 1956 in the name of a sagacious and visionary leader, a freedom fighter, a statesman and an able administrator "Bihar Vibhuti", Dr.Anugrah Narayan Sinha.He was an epitome of simplicity and sacrifice and a scholar of great repute. A.N. College today stands testimony to his contribution in the field of education.

It has been my proud privilege to be associated with this college for the several decades. I have been witness to the ups and downs thatthe college has faced through the years. This college has inspired me to make my contribution in whatever small way that I could.

A.N. College has been accorded "Centre for Potential for Excellence (CPE) status by UGC thrice. It was accredited with Grade-A in 2005, re-accredited with Grade-A in 2011 and again in 2017 by NAAC with CGPA 3.27/4. The College has won accolades both at the state as well as the national level. A.N. College has been ranked 41st in "India Today" ranking for science stream. I take this opportunity to congratulate the teachers, staff and students of the college for this achievement.

The college is conducting pioneering research works with the funds provided by agencies like UGC, DST, DBT, DAE, UNICEF, BARC and various distinguished agencies. Researches by our Teachers and Students in Arsenic and Fluoride contamination, material sciences, pure and applied science, geography, psychology, social sciences and humanities have been internationally acclaimed. The college is a distinguished partner of "Erasmus Mundas Academic Exchange Programme, "EURINDIA" sponsored by European Economic Commission and also under "UKIERI" (UK India research initiative). In April 2019 A. N. College was able to get Social Science project, funded under the Water JPI 2018 Transnational Call- NATWIP (Nature Based Solution for Water Management in the Periurban).

The year 2020 saw the widespread of Novel corona virus Covid-19 across countries. Sometime in the second week of March, State Governments across the country began shutting down schools and colleges as a measure to contain the spread of the Novel Corona Virus. During the first wave of the Pandemic IQAC of A.N. College responded to this situation by organising

online activities of the students and teachers. In quick succession four Faculty Development Programmes (FDPs), Six Student Development Programmes (SDPs) were conducted. A.N. College collaborated with IIRS – ISRO and "Coursera" for conducting online courses from top universities of the world. A National Webinar in collaboration with Indian Council of Historical Research was also organised.

The college had resumed its normal activities for a few months before the onset of the second wave of the Pandemic. The Additional Chief Secretary, Education Department, Shri Sanjay Kumar graced the college for a Book Release Event on the 15th of February, 2021.

Two books were released by him- a College Report containing the activities of the college between July 2018 to March 2020 and a Coffee Table Book on the Activities of IQAC during Covid Times, March to September, 2020.

On this occasion Certificates (Anugrah Award, Certificate of Appreciation, Corona Warrior Award) were also given to teachers and students by the Additional Chief Secretary, Sri Sanjay Kumar in appreciation to their contribution during Covid Times.

March, 2021 saw the second wave of the Pandemic which has been even more severe leading to closure of schools and colleges. Again The IQAC team of the college is back organising online programmes – Web Lecture Series, Webinars, Student Development Programmes, Faculty Development Programmes alongwith online teaching.

We have not shirked from our social responsibility during this period of the pandemic. The N.S.S. Volunteers and N.C.C. cadets of A. N. College have created awareness about the Pandemic, distributed mask and also spread awareness for vaccination.

"Anugrah Jyoti" is a forum to convey to the readership the long strides that the college has taken in the recent past from humble beginning. It is a true homage to the personality of Sri Anugrah Narain who has been the guiding spirit for all of us.

The achievements carry a challenge also to maintain the levels of excellence attained by the college. I hope and wish that all the teachers and students would shoulder the responsibility of carrying the flag of the college higher. The year ahead shall unfold many opportunities and challenges. Let us all strive to achieve greater heights. I would try to be the guiding light and bear the brunt of impediments faced in our forward march.

COVID-19 Pandemic and the resulting social and economic crisis have surely altered lives and disrupted normal life across the world. This is a collective crisis of unprecedented magnitude. We must rise to meet this formidable challenge bravely and shouldn't let the pandemic pin us down. We must remain positive and keep our hope alive that very soon mankind will be able to find a way out of this difficult situation soon in near future.

My good wishes to the teachers, staff and students on this auspicious day.

Prof. S.P. Shahi
Principal

अनुक्रमणिका

YOGA : The Balancing factor between science and technology	Prof. Abha Singh	01
The impact of Covid-19 on Education	Prof. S.P. Shahi	06
सोशल मीडिया का परिवर्तित स्वरूप	प्रो॰ अजय कुमार, डॉ. कविता कुमारी	12
समय की मार कोरोना का प्रहार	प्रो. अरूण कुमार	19
Poetry of escape or escape poetry	Prof (Dr.) Baban Kr. Singh	20
कोरोना काल : संवादहीनता की समस्या	प्रो. कलानाथ मिश्र	23
A poor bill for the "POOR"	Prof. Bimal Prasad Singh	28
Immunity : Need of the Hour	Prof. Preety Sinha	33
Gandhian Philosophy and Challenges of COVID-19	Prof. Tanuja Singh, Dr. Satyajit Singh	36
Shakespeare was much ahead of his time	Dr. Hansa Gautam	46
Rainwater Harvesting	Dr. Anju K. Gupta	49
Sustainable development is a goal towards which all human societies need to be moving	Dr. Anil Kumar Singh	52
Higher Education in India : An Enquiry from Political Economy Perspective	Dr. Binod Kr. Jha	54
Women workers in Bihar : Survival and Resilience during COVID Times (Case study of JEEViKA)	Dr. Ratna Amrit	62
Effect of gender in Alexithymia and Internet addiction among youth : An analytical study	Sujeet Kr. Dubey	64
खुदा ने बख्शी ईद की सौगात	डॉ॰ शबाना करीम	69
रामरचितमानस में शक्ति का समावेश	डॉ॰ संजय कुमार सिंह	71

अनुक्रमणिका

• मर्मान्तक अछि फूसि 'देखावा'क फैशन	:	डॉ॰ वन्दना कुमारी	76
• Online Teaching options amid COVID-19 Crisis	:	Abhishek Dutta	79
• Water Scarcity : India and the World	:	Dr. Amrita Chakraborty	82
• भक्ति आंदोलन : स्वरूप और प्रेरकतत्व	:	डॉ॰ विद्या भूषण	86
• इकबाल की काव्य रचनाओं में राजनीतिक विचार	:	डॉ॰ मणि भूषण कुमार	94
• अहिंसक शिक्षा-व्यवस्था	:	डॉ॰ रीता सिंह	100
• मीरा और स्त्री अस्मिता का संघर्ष	:	डॉ॰ विम्मी रानी 'क्षमा'	105
• जीवन उमंग है	:	डॉ॰ विनोद शंकर सिंह	110
• बुलंद हौसला	:	दिव्या श्री	111
• ढका चेहरा	:	संध्या श्री	112
• जायसी का सौन्दर्य वर्णन	:	प्रिया कुमारी	113
• हौसलों की उड़ान	:	रंजन कुमार यदुवंशी	115
• भ्रमरगीत : प्रेम की एकान्वित अभिव्यक्ति	:	ऋषिकेश मिश्र	118
• आधुनिकता की तपिश में झुलसता गाँव...	:	यशवंत यादव	121
• शिक्षा	:	शालिनी कुमारी	124
• यादें	:	सुरभि कुमारी	124
• समचार पत्रों के आईने से	:		125
• चित्र दीर्घा	:		131

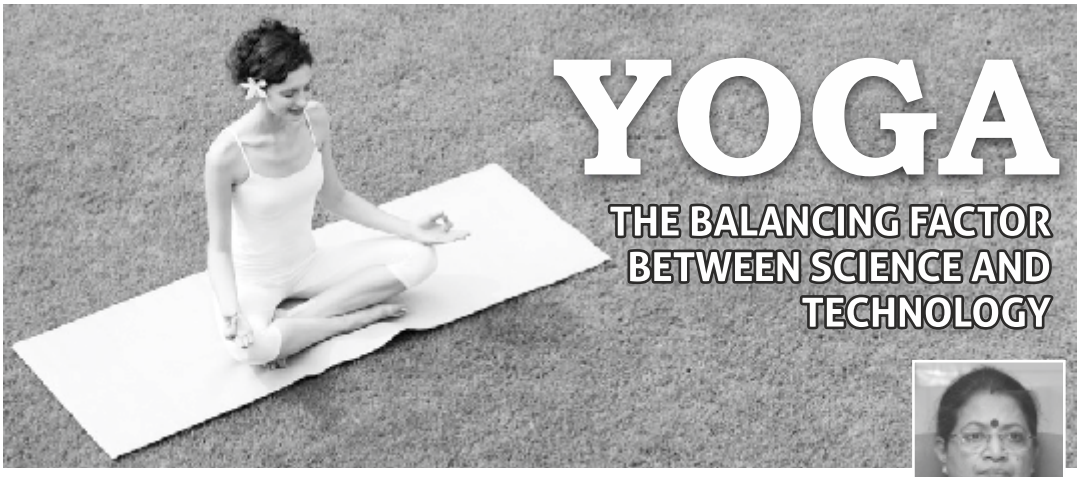

YOGA

THE BALANCING FACTOR BETWEEN SCIENCE AND TECHNOLOGY

Yogis and scientists move in the same direction, still, quite contrary to the yogis, scientists vitiate from their goal of human welfare leading towards disasters caused by technology.

Prof. Abha Singh
Pro-Vice-Chancellor
B.N. Mandal University, Madhepura
(Former ICCR Chair, MGI, Mauritius)
Former Professor & Head,
Dept. of Philosophy
Patliputra University, Patna

Origin of the word 'science' can be traced from the Latin word 'scientia' meaning 'knowledge'. It is a systematic enterprise that builds and organizes knowledge in the form of testable explanations and predictions about the universe. Thus, science is a systematic and formulated knowledge or knowledge ascertained by observation and experiment, critically tested and brought under general principles. However, in Indian context 'to know' has been used to denote a discipline worth adopting and it has been popularly known as vidya, which comes from the root vid. It means knowing, acquiring or understanding.

Science pursues truth for the sake of truth and knowledge for the sake of knowledge. Undoubtedly, it has brought out positive effects in the life of common people and has given immense hope to them. It has converted the entire world to a family. But difficulty arises when selfish operations begin on the basis of scientific investigations leading it towards vulgarism of commercialism. Instead of giving solidarity to a global family, it has allowed itself to be used to create a global exploitative market. It proceeds from the field of

knowledge to the field of use in the form of applied science and technology. Today the vast spectrum of scientific knowledge eventually translates itself into technology, which is the sum of techniques, skills, methods and processes used in the production of goods and services or in the accomplishment of objectives, such as scientific investigation.

Basically, technologist is concerned with the application of science to satisfy or fulfil the needs or aspirations of man, while scientist pursues knowledge for its own sake. Plainly, scientists and technologists are two different species of knowledge seekers. Their training, motivation and involvement in society vary accordingly. When the dispassionate purity of quest of science comes into contact with forces which are often obscure, the intervention of normative pursuits of values, ethical and spiritual, gains primacy. This is for the simple reason that while science has made discoveries which have served practical humanitarianism, technology has converted many of its achievements into means of mass destruction.

It is pertinent now to look back and evaluate as to what mankind has earned, and what it has lost on account of the reckless technological development. How much has it impaired the mental peace, the mental relaxation, and the mental health (as well as the physical health due to psychosomatic disorders) ? We cannot allow technology to monopolize neglecting these vital factors. Therefore, the pertinent question is : whether such development of technology, which puts a question-mark on the very existence of mankind, is acceptable? How to put a check and balance the technological development? The answer to this question becomes difficult because technology gets its cue from science. Since the

latter can produce great results, its exploitation is often very severe. The fact of the matter is that science does not have within it the inherent leverage by which it can prevent its exploitation by human impulses and passions.

Herein importance of shared responsibility of both, science and technology becomes paramount. Scientists, as well as technologists must bear the responsibility of not indulging into any activity that may fragment the universal good. As a person they must abide by the rules of universal solidarity, lokasangraha. In other words, science cannot afford to be value neutral; it has to build a bridge between the realm of knowledge and the realm of value. It is now increasingly recognised that the development of science should be supplemented by enormous development of human goodness. However, history is indicative of the fact that scientists have confined themselves to the discovery of truths. But, while translating scientific discoveries into technology, people often forget the justified fact that the essence of knowledge is "conduct". This is at the root of the production of destructive weapons, or exploitation of nature, or the manufacture of luxurious products that are indirectly responsible for increasing the disparity between the rich and poor in the world.

Undoubtedly, for individual development and understanding of the environment and its challenges and of the rules that govern natural phenomena or social behaviour, the ability to evaluate and make judgments that would stand the test of the time, and the ability to receive and assimilate information and convert it into knowledge and then into wisdom, are important. Logical reasoning and scientific method plays an important role in acquisition of the above-mentioned understanding and abilities. It provides a framework for understanding the environment and its challenges and the rules of natural and social phenomena, for evaluating and arriving at opinions and decisions that would stand the test of time. This is important for collective development.

However, scientists often fail to assess the merit of such goals. Herein opens the gates of ethics and yoga in the world of science and technology. Yoga carries with it a well defined code of conduct, whereas there is no such code existing in the field of science. Ethical norms are not conventions based on interest, enlightened or otherwise. They are simply the

As a person they must abide by the rules of universal solidarity, lokasangraha. In other words, science cannot afford to be value neutral; it has to build a bridge between the realm of knowledge and the realm of value.

requirements of a healthy social life. The basic postulate implicit in the practice of Yoga is that human nature can be transformed and raised above the shackles of greed, hatred and fear. But this assumption is not merely a theoretical one. It is a well attested fact of Yogic experience and tradition. In this sense it is an assumption built into the texture of spiritual culture. Similarly, the purification of the mind gives it a qualitatively superior state of enlightenment, happiness and well-being. It is again a fact of experience in terms of tradition and an initial assumption for the individual.

It is often claimed that science and technology has provided us with sophisticated gadgets to measure and assess objectively the effects of the techniques of spiritual practices (such as meditation) on the improvement of the human instincts and urges (or even the primal drives), enhancing the utility of these methods. For example if you could exactly (objectively) ascertain through the perfect scientific method that, by practicing such and such meditation, the tension could be relieved or the attitudinal change and behavioural modification could be brought out, many of the maladies of human kind could be brought to an end. To my mind such claim is only wishful thinking. The moment one begins such objective assessment, like 'paradox of hedonism', it would lose the goal. This is for the simple reason that objective assessment of the highly subjective process would deviate the whole process.

Yoga is definitely a living vision which transforms the inner life, faculties and powers of the person who attains it. Authority belongs to the one 'who has attained' (apta) this vision. The basic assumption of Yoga is that no observation can be impartial or objective so long as there are modifications in the consciousness that observes. Even the so-called scientific

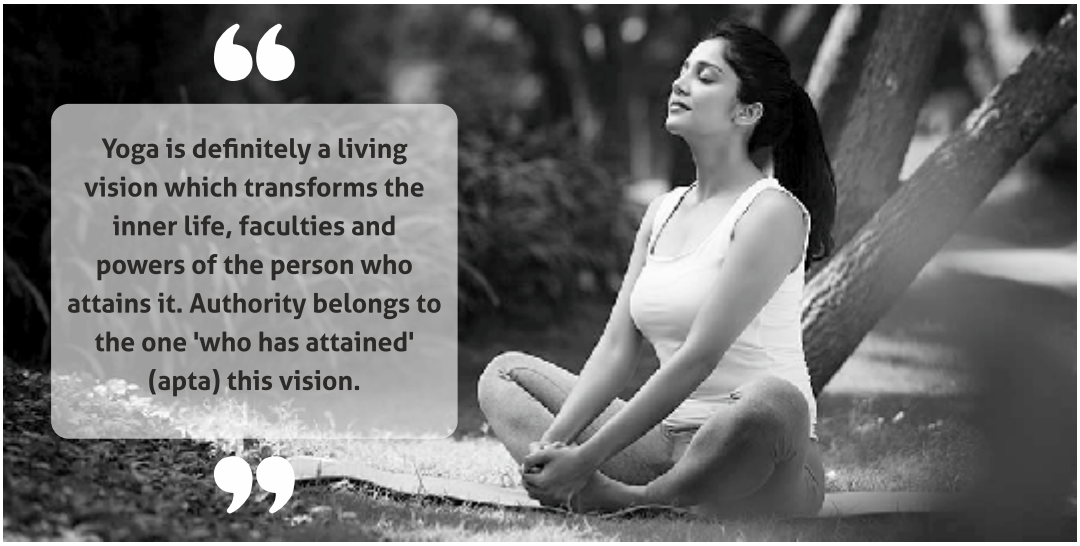

observations would not merit the title of objectivity in the realm of Yoga, unless the scientist is free from the chiitavritti. There is, according to yoga, a state of consciousness, the state of pure witness, the sakshin, without any ripple whatsoever free from all partiality or narrowness, which alone can comprehend the objective fact objectively, without any personal bias, without any relativity. This is the phenomenon of the pure subject observing the Object as it is, in itself.

The true nature of man is covered by a series of experiences. Each experience of man corresponds to the way of his viewing the world and of seeking and valuing it. The gamut of human experience runs from the purely physical level of instinctive life to the highest level of purely spiritual knowledge. Appropriately lived, life at each level is a preparation for transcending it. Meaning thereby, for the discovery of the laws of ultimate truth, it is absolutely necessary to move from gross to subtle. Through the arousal of extra-sensory perception, yogis discover the subtle truths.

Even the scientists try to find out the subtle law of truth through the minute sophisticated equipments. When one makes a dent into the methodology of science it is found that scientific enquiry is made on two different levels: intellectual and intuitive. Therefore, both i.e. yoga and science move in the same direction, that is that of subtlety. However, the extra-sensory consciousness developed by yogis need no external gadgets for the verification of their truth. In the context of discovery it may be intuitive but in the context of validation it is subject to some or other sort of test. But in highest forms of Spiritual experience, Sat, Cit and Ananda, which are self-clarificatory, may also be called Science. At the highest level Science or Jnana is self-validated. First principles of any domain of knowledge, which we are obliged to recognize, are self-evident and self-validated. Denial of this position lands every form of science, physical or spiritual, to the fallacy of infinite regress (anavastha dosha). Careful and critical scrutiny of all axiomatic systems brings out this inescapable truth.

Yogis and scientists move in the same direction, still, quite contrary to the yogis, scientists vitiate from their goal of human welfare leading towards disasters caused by technology. The reason behind is that yoga functions at consciousness, thoughts, emotions, attitudes, values and character, whereas science looks at things that are physical and amenable to the senses. If the scientists begin functioning with yogic temperament then definitely technological developments would be directed not for selfish gain.

In the view of the foregoing one may safely conclude that Yoga can act as an amalgamation between Science and Technology; and, if and when this takes shape, mankind will definitely be the ultimate gainer.

The Impact of COVID-19 on EDUCATION

A total of 1.725 billion students globally had been affected by the closure of schools and higher education institutions in response to the COVID-19 pandemic.

Prof. S.P. Shahi
Principal
A.N.College, Patna
Patliputra University, Patna

The novel human corona virus disease COVID-19 has become the fifth documented pandemic since the 1918 Spanish flu pandemic. COVID-19 was first reported in Wuhan, China, and subsequently spread worldwide. The coronavirus outbreak came to light on December 31, 2019 when China informed the World Health Organisation of a cluster of cases of pneumonia of an unknown cause in Wuhan City in Hubei Province. Subsequently the disease spread to more Provinces in China, and to the rest of the world. The corona virus was officially named severe acute respiratory syndrome corona virus 2 (SARS-CoV-2) by the International Committee on Taxonomy of Viruses based on phylogenetic analysis. SARS-CoV-2 is believed to be a spill over of an animal corona virus and later adapted the ability of human-to-human transmission. Because the virus is highly contagious, it rapidly spreads and continuously evolves in the human population. Corona virus disease (COVID-19) is an infectious disease caused by a newly discovered corona virus. Most people infected with the COVID-19 virus will experience mild to moderate respiratory illness and recover without requiring special treatment. Older people, and those with underlying medical problems like cardiovascular disease, diabetes, chronic respiratory disease, and cancer are more likely to develop serious illness. The COVID-19 virus spreads primarily through droplets of saliva or discharge from the nose when an infected person

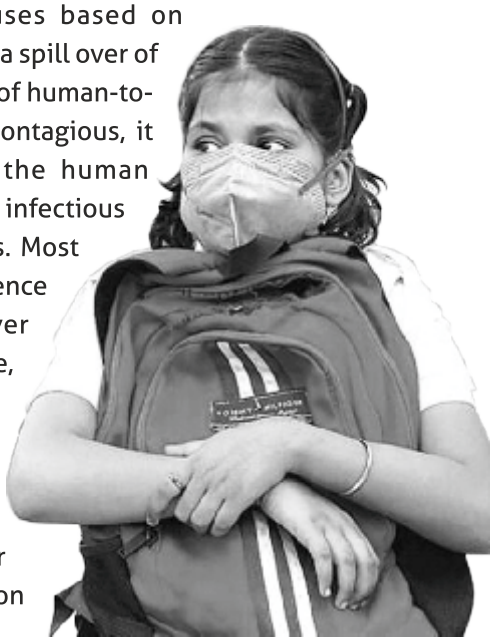

coughs or sneezes.

Corona virus pandemic has significantly disrupted various sectors in India including oil and gas, automobiles, aviation, agriculture, retail, etc. We can't ignore that hardly a sector would remain unaffected by the crisis. The impact may be more or less. Same is with the education sector in India. Mid-April : A total of 1.725 billion students globally had been affected by the closure of schools and higher education institutions in response to the COVID-19 pandemic. According to the UNESCO Monitoring Report, 192 countries had implemented nationwide closures, affecting about 99% of the world's student population.

Universities and college campuses are places where students live and study in close proximity to each other. They are also buzzing cultural hubs where students are brought together from nations around the world. Recently, the foundations of this unique ecosystem have been impacted significantly by the rapid spread of the corona virus (Covid-19) outbreak, creating uncertainty regarding the implications for higher education.

Over the past weeks, education officials have been forced to cancel classes and close the doors to campuses across the world in response to the growing corona virus outbreak. In addition, US institutions have switched classes to online learning, cancelled spring break trips and students studying abroad in China, Italy and South Korea have been encouraged to return home to complete their studies.

While class closures, dips in enrolment at the beginning of a new semester and cancellations may be temporary, it's hard to foresee whether the novel corona virus will

result in long-term disruption to the higher education system.

One of the biggest concerns for the sector at large is the percentage of international students that make up the domestic higher education markets. In the US alone, Chinese students make up 33.7 per cent of the foreign student population, while Indian students comprise of 18.4 per cent.

While travel restrictions to and from China have been helpful in slowing down the spread of the disease, they have also left international students stranded. According to a Covid-19 Survey by the Institute of International Education (IIE), 830 Chinese students have been unable to return to the US to continue their studies. While this may be a small percentage of the overall international student population, the question remains: How long will this last? If the restrictions remain in place, the US higher education system could bear the brunt of an economic downturn. So, how should universities and colleges around the world adjust their learning styles to retain program enrolment and provide accessibility to students?

The best way to prevent and slow down transmission is to be well informed about the COVID-19 virus, the disease it causes and how it spreads. Protect yourself and others from infection by washing your hands or using an alcohol based rub frequently and not touching your face.

Efforts to slow the spread of COVID-19 through non-pharmaceutical interventions and preventive measures such as social-distancing and self-isolation have prompted the widespread closure of primary, secondary and tertiary schooling in over 100 countries.

Previous outbreaks of infectious diseases have prompted widespread school closings around the world, with varying levels of effectiveness. Mathematical modelling has shown that transmission of an outbreak may be delayed by closing schools. However, effectiveness depends on the contacts children maintain outside of school. School closures appear effective in decreasing cases and deaths, particularly when enacted promptly. If school closures occur late relative to an outbreak, they are less effective and may not have any impact at all. Additionally, in some cases, the reopening of schools after a period of closure has resulted in increased infection rates. As closures tend to occur concurrently with other interventions such as public gathering bans, it can be difficult to measure the specific impact of school closures.

During the 1918-1919 influenza pandemic in the United States, school closures and public gathering bans were associated with lower total mortality rates. Cities that implemented such interventions earlier had greater delays in reaching peak mortality rates. Schools closed for a median duration of 4 weeks according to a study of 43 US cities'

response to the Spanish Flu. School closures were shown to reduce morbidity from the Asian flu by 90% during the 1957–58 outbreaks and up to 50% in controlling influenza in the US, 2004–2008.

Multiple countries successfully slowed the spread of infection through school closures during the 2009 H1N1 Flu pandemic. School closures in the city of Oita, Japan, were found to have successfully decreased the number of infected students at the peak of infection; however closing schools was not found to have significantly decreased the total number of infected students. Mandatory school closures and other social distancing measures were associated with a 29% to 37% reduction in influenza transmission rates. Early school closures in the United States delayed the peak of the 2009 H1N1 Flu pandemic. Despite the overall success of closing schools, a study of school closures in Michigan found that "district level reactive school closures were ineffective.

During the swine flu outbreak in 2009 in the UK, in an article titled "Closure of schools during an influenza pandemic" published in the Lancet Infectious Diseases, a group of epidemiologists endorsed the closure of schools in order to interrupt the course of the infection, slow further spread and buy time to research and produce a vaccine. Having studied previous influenza pandemics including the 1918 flu pandemic, the influenza pandemic of 1957 and the 1968 flu pandemic, they reported on the economic and workforce effect school closure would have, particularly with a large percentage of doctors and nurses being women, of whom half had children under the age of 16. They also looked at

the dynamics of the spread of influenza in France during French school holidays and noted that cases of flu dropped when schools closed and re-emerged when they re-opened. They noted that when teachers in Israel went on strike during the flu season of 1999–2000, visits to doctors and the number of respiratory infections dropped by more than a fifth and more than two fifths respectively.

As the concurrent situation is, all major entrance examinations are postponed including engineering, medical, law, agriculture, fashion and designing courses, etc. This situation can be a ringing alarming bell mainly in private sector universities. Maybe some faculties and employees may face salary cuts, bonuses and increments can also be postponed.

The lockdown has generated uncertainty over the exam cycle. May be universities may face impact in terms of a slowdown in student internships and placements, lower fee collection that can create hurdles in managing the working capital. Another major concern is that it can affect the paying capacity of several people in the private sector, which is catering to a sizeable section of the students in the country. Student counselling operations are also affected. Several institutions may pause faculty hiring plans for existing vacancies which in turn affect quality and excellence. Structure of schooling and learning includes teaching and assessment methodologies and due to closure, it will be affected. Technology may play an important role in the lockdown period like study from home and work from home. In India, some private schools could adopt online teaching methods. Low-income private and government school may not be able to adopt online teaching methods. And as a result, there will be completely shut down due to no access to e-learning solutions. In addition to the opportunities for learning, students will also miss their meals and may result in economic and social stress.

Higher education sectors are also disrupted which again pave an impact on the country's economic future. Various students from India took admissions in abroad like the

The lockdown has generated uncertainty over the exam cycle. May be universities may face impact in terms of a slowdown in student internships and placements, lower fee collection that can create hurdles in managing the working capital.

US, UK, Australia, China etc. And these countries are badly affected due to COVID-19. Maybe there is a possibility that students will not take admissions there in future and if the situation persists, in the long run then there will be a decline in the demand for international higher education also.

Another major concern is employment. Students those have completed their graduation may have fear in their minds of withdrawal of job offers from the corporate sector due to the current situation. The Centre for Monitoring Indian Economy's estimates unemployment shortage from 8.4% in mid-March to 23% in early April. In the urban unemployment rate is 30.9%.

We can't ignore that technology plays a crucial role in the educational system and the demand for the current situation is this only.

Possible alternatives or solutions:-

- With the help of power supply, digital skills of teachers and students, internet connectivity it is necessary to explore digital learning, high and low technology solutions, etc.
- Students those are coming from low-income groups or presence of disability, etc. distance learning programs can be included.
- To provide support for digitalisation to teachers and students.
- The necessity to explore digital learning platforms.
- Measures should be taken to mitigate the effects of the pandemic on job offers, internship programs and research projects.
- E-tech reform at the national level that is an integration of technology in the present Indian education system.

We can't ignore that at this time of crisis effective educational practice is needed for the capacity-building of young minds. Central Government and State need to take some measures to ensure the overall progress in the country. Time never wait, this tough time will also pass. Till then stay safe, stay at home!

Reference:-

1. https://www.who.int/health-topics/coronavirus#tab=tab_1
2. https://www.mohfw.gov.in/
3. http://statehealthsocietybihar.org/
4. https://www.hhs.gov/

सोशल मीडिया का परिवर्तित स्वरूप

प्रो0 अजय कुमार
विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग
ए.एन. कॉलेज, पटना।

डॉ॰ कविता कुमारी
असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
आर.एम. कॉलेज, सहरसा

सोशल मीडिया की साकारात्मक उपयोग हेतु सरकार, स्वयंसेवी संस्थाओं, राजनेताओं और सीविल सोसाईटी के लोगों को गंभीरतापूर्वक विचार करना चाहिए ताकि इसके असंयमित उपयोग, दुरूपयोग तथा इसका दुष्प्रचार का माध्यम बनने से रोका जा सके।

वर्तमान काल में सोशल मीडिया जीवन का अहम् हिस्सा है। एक ऐसा विशाल नेटवर्क जो दुनिया को आपस में जोड़े रखा है। भूमण्डलीकरण के इस दौड़ में मानवाधिकार, लैंगिक संवेदनशीलता तथा सामाजिक ज्ञान से जुड़े मुद्दों पर सोशल मीडिया में बहस काबीले तारीफ है। सोशल मीडिया का सही प्रयोग किसी वरदान से कम नहीं है लेकिन इसका असंयमित प्रयोग हमारे अंदर कई तरह के मनोवैज्ञानिक समस्याओं को जन्म दे रहा है। सोशल मीडिया परम्परागत मीडिया से अलग है जो द्रुत गति से सूचनाओं को हर क्षेत्र में भेजती है। सोशल मीडिया परस्पर संवाद का वेब आधारित एक ऐसा गतिशील मंच है, जिसके माध्यम से लोग संवाद करते हैं, आपसी जानकारियों का आदान–प्रदान करते हैं और उपयोगकर्त्ता जनित सामग्री सृजन की सहयोगात्मक प्रक्रिया के एक अंश के रूप में संशोधित करती है। फेसबुक, ट्विटर, वाट्सअप, स्काइप, गूगल, ई–मेल इत्यादि के माध्यम से सोशल मीडिया अपनी सेवाएं देता है।

सोशल मीडिया समाजशास्त्रीय अध्ययन का एक महत्वपूर्ण केन्द्र बिन्दू बन गया है। यह व्यापक रूप से वैश्विक स्तर पर मानव जीवन के विभिन्न पक्षों को प्रभावित करता है। मार्लिन कैम्पबेल (2005)[1] ने अपने अध्ययन के आधार पर बताया कि सोशल मीडिया लोगों को आपस में जोड़कर एक सामाजिक समूह के निर्माण की क्षमता देता है। विद्यालय के छात्र–छात्राओं के अध्ययन के आधार पर इन्होंने बताया कि ये छात्र–छात्राएँ सोशल नेटवर्किंग का सदुपयोग अपने सत्रीय–कार्य एवं परियोजना कार्य को तैयार करने में सहयोग करते हैं। फेसबुक छात्र–छात्राओं को वर्ग के बाहर किसी विषय पर अपने विचारों को

आदान–प्रदान करने का अवसर प्रदान करता है। एज.बी.एलिसन एवं सी.एल. चार्ल्स (2007)[2] ने सामाजिक नेटवर्किंग के प्रभावों का अध्ययन कर फेसबुक एवं सामाजिक पूँजी को निर्माण के बीच के साकारात्मक सम्बन्धों का अध्ययन किया। जी0 गर्वनर एल0ग्रास, एम0 मार्गन एवं सिंगनोरीली (1982)[3] ने राजनीतिक अभिप्रेरणा में कम्प्यूटर की भूमिकाओं का अध्ययन किया। इसमें उन्होंने टेलीविजन के माध्यम से किसी राजनीतिक परिस्थितियों के निर्माण, राजनीतिक दलों एवं उसके कार्यक्रमों का जनता के बीच एक विशेष इमेज बनाने के तरीकों एवं उपयोगिताओं का अध्ययन किया।

सोशल मीडिया के द्वारा वैश्विक स्तर पर संस्कृति का प्रसार होता है, जिसके परिणामस्वरूप सांस्कृतिक साम्राज्यवाद का उदय एवं विस्तार हो रहा है। टॉमिलसन[4] का मत है कि एक देशी संस्कृति की कीमत पर किसी विदेशी संस्कृति के मूल्यों एवं आदतों के उत्थान एवं प्रसार हेतु राजनीतिक एवं आर्थिक शक्ति का प्रयोग होता है। सांस्कृतिक परिवर्तन हमेशा से एक संस्कृति का अन्य संस्कृतियों के साथ एक परस्पर क्रिया का परिणाम रहा है। सांस्कृतिक मिलन की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप संस्कृति में विविधता आती है और इसमें परिवर्तन होता है। भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से विश्व में जो सांस्कृतिक परिवर्तन हो रहे हैं उनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका सोशल मीडिया के साधनों के रहे हैं। वर्तमान में मानव का प्रवास एक स्थान से दूसरे स्थानों में होता है। प्रवास करने वाले लोग अपने परिवार और मित्रों के साथ सोशल मीडिया से जुड़े भी रहते हैं। जहाँ मनुष्य एक ओर प्रवास के कारण शारीरिक रूप से अपनी संस्कृति से दूर रहते हैं वहीं सोशल मीडिया के माध्यम से अपनी संस्कृति के साथ जुड़े भी रहते हैं। मीडिया एवं संस्कृति को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है। मीडिया संस्कृति एवं व्यक्तियों के बीच सम्पर्क का एक माध्यम है जिससे किसी राष्ट्र की सांस्कृतिक धरोहरें सुरक्षित रहती हैं। मीडिया के माध्यम से देश की विभिन्न क्षेत्रों की सांस्कृतिक पहचान हमारे सामने आती हैं।[5]

सोशल मीडिया शिक्षा के क्षेत्र में अत्यन्त प्रभावकारी है। ऑनलाईन शिक्षा की व्यवस्था ने अंतर्राष्ट्रीय स्तर की शिक्षा और शैक्षणिक जानकारियाँ उपलब्ध करवाने का काम बखूबी किया है। हमारे शैक्षणिक उपकरणों एवं परियोजनाओं में लैपटॉप शामिल हो चुका है और शिक्षा के क्षेत्र में क्रान्तिकारी बदलाव आ रहा है।[6] सोशल मीडिया के छात्रों, विशेष रूप से छात्राओं की शिक्षा के लिए आपस में सम्पर्क करने, अंतः क्रिया करने एवं सीखने के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिकाएँ निभा रहा है।[7] इसी प्रकार दूरस्थ शिक्षा के क्षेत्र में इंटरनेट जैसे मीडिया के साधनों ने शिक्षा के प्रसार में प्रभावकारी भूमिका निभा रहा है। इंटरनेट के द्वारा देश–विदेश के विद्यार्थियों को दूरस्थ शिक्षण संस्थाओं ने अध्ययन सामग्रियों को व्यापक स्तर पर उपलब्ध करा रहा है। आज वैश्विक महामारी के दौड़ में भारत में इंटरनेट ही शिक्षण का एक मात्र माध्यम रह गया है जो स्कूली शिक्षा से लेकर महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षण व्यवस्था का एक माध्यम रह गया है। 2020 के लॉकडाउन के कारण सारे शैक्षणिक संस्थानों को बंद करना पड़ा, जिससे शिक्षण प्रक्रिया बाधित हुई ज्ञान के निर्बाध प्रसार को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से विद्यालय से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक समस्त शैक्षणिक संस्थानों को वैकल्पिक शैक्षणिक ऑनलाईन माध्यम अपनाना पड़ा, जिसे डिजिटल लर्निंग, ई–लर्निंग, वेब बेस्ड लर्निंग, वर्चुअल लर्निंग, वर्चुअल स्पेस लर्निंग, रिमोट लर्निंग और गृह शिक्षा आदि के

नाम से जाना जाता है।[8] यह सत्य है कि ऑनलाईन शिक्षण कभी भी वास्तविक शिक्षण मंच का स्थान नहीं ले सकता है, क्योंकि इसमें परस्पर मानवीय संवाद की संभावना कम है। स्कूली छात्रों के विद्यालय में आगमन से उनमें मानवीय गुणों का विकास होता है और अपने साथियों से सीखने की प्रेरणा मिलती है। महामारी काल में सोशल मीडिया ही एकमात्र साधन रहा जो सभी कोटि के छात्रों को अपने शिक्षण संस्थाओं से जोड़कर रखा।

सोशल मीडिया प्रवसन एवं नगरीकरण को गति प्रदान करने में सहायक सिद्ध हुआ है। प्रवसन एक सामाजिक घटना है जिसमें सदैव लोग बेहतर आर्थिक अवसरों की तलाश में अपने गृह प्रदेश के भीतर या बाहर प्रवास करते हैं। सोशल मीडिया द्वारा रोजगार क्षेत्रों की जानकारियाँ प्राप्त होती हैं जो आर्थिक उन्नति एवं विकास में सहायक सिद्ध हुआ है। इंटरनेट ने दूरियाँ मिटाकर भौगोलिक सरहदों को पीछे छोड़ दिया है और एक छोटा सा गाँव भी विश्व पटल पर देश विदेश के विभिन्न क्षेत्रों से जुड़ चुका है। इसमें सूचनाओं के आदान–प्रदान को आसान बनाने के साथ सम्पर्क में भी गतिशीलता को बढ़ाया है।[9] ग्रामीण उत्थान के संबंध में सहयोगात्मक प्रौद्योगिकी की क्षमता से सामाजिक आर्थिक परिवर्तन हो रहे हैं। इससे ग्रामीण क्षेत्र विशेषकर कृषि लाभान्वित हो रहा है। इन्टरनेट कृषि संबंधी अद्यतन जानकारी जैसे– मौसम की जानकारी, खाद बीज की उपयोगिता, उत्पादित कृषि वस्तुओं के लिए बाजार की उपलब्धता आदि को गाँव के किसानों को आसानी से उपलब्ध करा रहा है। ग्रामीण समाज में तीन तरह के क्षेत्रों को सूचना प्रौद्योगिकी प्रभावित कर रहा है– एक, इसके माध्यम से ग्रामीण–सशक्तिकरण किया जा रहा है, जिसका एक उदाहरण ई–चौपाल है। ई–चौपाल के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्र एक बड़े क्षेत्र से जुड़कर तरह–तरह की सूचनाएँ प्राप्त कर रहा है। दूसरा, ई–शासन प्रणाली जिसमें आई0टी0 के जरिए पारदर्शिता और बेहतर ग्रामीण–शासन व्यवस्था चल रही है, तथा तीसरा, डिजिटल प्रौद्योगिकी के उपयोग से ग्रामीण बाजार का विस्तार हुआ है। ई–प्रशासन के माध्यम से ग्रामीण विकास की पारिस्थितिकी, आवश्यकता एवं सहभागिता का मानकीकरण किया जा रहा है। इसके माध्यम से ग्रामों से सम्बन्धित विविध आंकड़े सहज व शीघ्रता से उपलब्ध होने के कारण नीति निर्माण, नियोजन व अनुसंधान के क्षेत्र में सफलता मिलने से योजनाओं और नीतियों के प्रभावी क्रियान्वयन को सुनिश्चित किया जा रहा है। इससे विकास योजनाओं का लाभ अधिक से अधिक ग्रामीणों तक पहुँच रहा है। भारतीय ग्रामीण समाज में केन्द्र एवं राज्य सरकार द्वारा कई तरह की विकास योजनाएँ जैसे गरीबी उन्मूलन, रोजगार, खाद्य सुरक्षा, बाल श्रम का उन्मूलन, मानवाधिकार की रक्षा, महिला

ग्रामीण समाज में तीन तरह के क्षेत्रों को सूचना प्रौद्योगिकी प्रभावित कर रहा है : एक, इसके माध्यम से ग्रामीण–सशक्तिकरण किया जा रहा है, जिसका एक उदाहरण ई–चौपाल है। दूसरा, ई–शासन प्रणाली जिसमें आई0टी0 के जरिए पारदर्शिता और बेहतर ग्रामीण–शासन व्यवस्था चल रही है तथा तीसरा, डिजिटल प्रौद्योगिकी के उपयोग से ग्रामीण बाजार का विस्तार हुआ है।

सशक्तिकरण, सभी के लिए शिक्षा, ग्रामीण बिजली, पेयजल, सड़क आदि चलाए जा रहे हैं। संचार साधनों ने इन योजनाओं तक आम लोगों की पहुँच को आसान बना दिया। इससे ग्रामीण योजनाओं के लाभ तक ग्रामीणों की सीधी पहुँच हुई। सूचना, शिक्षा एवं संचार नागरिकों में गतिशीलता एवं जागरूकता तथा विकास कार्यों में उनकी प्रत्यक्ष भागीदारी का राह आसान किया।[10] इसी प्रकार सोशल मीडिया का भी ग्रामीण विकास पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। इस बात में कोई संदेह नहीं है कि सोशल मीडिया के नेटवर्क ने ग्रामीण लोगों के जीवन को बदल दिया। उदाहरणार्थ कृषि के क्षेत्र में सोशल मीडिया ने कृषकों को विकास के कई अवसर उपलब्ध कराये हैं तथा कृषि उत्पादों की बिक्री में मध्यस्थों की भूमिका को समाप्त कर दिया।[11]

आज चिंता का विषय है कि वर्तमान समय में सोशल मीडिया अपनी आलोचनाओं के लिए चर्चा का विषय रहता है। आज सोशल मीडिया की भूमिका सामाजिक समरसता को बिगाड़ने और साकारात्क सोच की जगह समाज को बांटने वाली सोच को बढ़ावा देनेवाली हो गई है। सोशल मीडिया के जरिए अफवाह फैलाकर लोगों को भीड़ द्वारा मार देने की घटनाएँ आम हो गई हैं। इसके द्वारा न केवल सामाजिक और धार्मिक उन्माद फैलाए जा रहे हैं बल्कि राजनीतिक स्वार्थ के लिए भी गलत जानकारियाँ परोसी जा रही हैं। इसके जरिए ऐतिहासिक तथ्यों को भी तोड़–मरोड़ कर पेश किया जा रहा है। न केवल ऐतिहासिक घटनाओं को अपने नजरिए से पेश करने की कोशिश हो रही है बल्कि आजादी के सुत्रधार रहे नेताओं के बारे में भी गलत जानकारियाँ बड़े स्तर पर साझा की जा रही हैं। राष्ट्र पिता महात्मा गाँधी और पंडित जवाहरलाल नेहरू के बारे में भी अनेक भ्रन्तियां फैलाना इसी का एक पहलू है। मुमकिन है कि राजनीतिक फायदा हासिल करने के लिये ऐसा किया जा रहा हो।

सोशल मीडिया में प्रतिदिन कई बीलियन लोग फेसबुक पर लॉगइन करते हैं, ट्वीटर पर ट्वीट करते हैं और इंस्टाग्राम पर तस्वीरें पोस्ट करते हैं।[12] सन् 2018 में डॉ0 नाज परवीन ने साक्षात्कार के आधार पर यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया कि करीब 70 प्रतिशत किशोरों ने सोशल मीडिया के नाकारात्मक प्रभावों की चर्चा की। शोध में पाया गया कि किशोरों में डिप्रेशन की शिकायत आने लगी तथा मानसिक स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। इसी विषय पर उन्होंने 2020 ई0 में एक अध्ययन किया और पाया कि जिन युवाओं ने अपना फेसबुक एकाउन्ट एक माह के लिए डीएक्टीवेट कर दिया, उनमें डिप्रेशन और चिन्ता कम देखी गई, उनमें संतुष्टी और प्रसन्नता या खुशी का ग्राफ लगातार बढ़ता हुआ देखा गया। एम0डब्ल्यू0 बेकर, ए0रीम, एवं जे0एच0 क्रिस्टोफर (2013)[13] ने यह बताया कि सोशल मीडिया पर चैटिंग, गेमिंग आदि में लगातार भागीदारी करने

वाले लोगों में शक्तिहीनता एवं व्याग्रता जैसी समस्याएँ आ जाती है। इन्होने मेकिगन स्टेट यूनिवर्सिटी में किए गये अध्ययन मे पाया कि 70 प्रतिशत लोगों ने सोशल मीडिया के प्रभाव में डिप्रेशन की स्थिति को तथा 42 प्रतिशत लोगों ने ऐंगजाइटी की स्थिति को स्वीकार किया। गेबरियल ह्वीमेन (2011)[14] ने सोशल मीडिया के द्वारा ब्लैकमेलिंग करना, अपत्तिजनक मैसेज एवं तनाव तथा आत्महत्या जैसे परिणामों के बीच सम्बन्धों का अध्ययन किया। इन्होंने अपने अध्ययन के आधार पर यह सोशल मीडिया के दुष्प्रभाव के रूप में युवाओं में आत्महत्या, भावनात्मक समस्याएँ आदि को माना। सोशल मीडिया के द्वारा 'बुलिंग' जैसे अपराध के द्वारा युवाओं में आत्महत्या एवं मानसिक स्वास्थ्य जैसी समस्याओं के उत्पन्न होने का अध्ययन किया।

सोशल मीडिया साइबर बुलिंग को बढ़ावा देता है। यह फर्जी खबर. और भ्रामक भाषण फैलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सोशल मीडिया पर गोपनीयता की कमी होती है और कई बार निजी डेटा चोरी होने का खतरा रहता है। साइबर अपराध जैसे हैकिंग और फिशिंग आदि का खतरा भी बढ़ जाता है। गेवरियल ह्वीमेन (2011)[15] ने सोशल मीडिया एवं आतंकवाद जैसे अपराध एवं सामाजिक समस्या पर अध्ययन किया। इन्होंने बताया कि सोशल मीडिया एवं आतंकवाद का संबंध सोलह वर्ष पूर्व ही प्रारम्भ हो गया था तथा इसमें लगातार वृद्धि होती जा रही है। सोलह वर्ष पूर्व ऐसे आतंकी संगठनों की संख्या केवल 12 थी जो बढ़कर 9800 तक बढ़ गई। 9/11 की आतंकी घटना के बाद जिहादी आंदोलन एवं अल–कायदा जैसे आतंकी संगठन ने सोशल मीडिया का उपयोग शुरू किया। विश्व आर्थिक मंच की रिपोर्ट के अनुसार दुनियाँ मे सोशल मीडिया के माध्यम से गलत सूचनाओं का प्रसार कुछ प्रमुख उभरते जोखिमों में से एक है जो राष्ट्र की प्रगति में ही नहीं बल्कि हमारी युवा पीढ़ी के उज्जवल भविष्य में भी बाधक है।

वर्तमान समय में सोशल मीडिया गलत इस्तेमाल की वजह से चर्चा में रहा है। एक तरफ भारत सरकार डिजिटल इण्डिया जैसे कार्यक्रम लाकर देश की तस्वीर बदलने का प्रयास कर रही है तो दूसरी तरफ हम इस कार्यक्रम के एक महत्वपूर्ण हिस्से का दुरूपयोग कर देश के लिए चुनौती पेश कर रहे हैं। सोशल मीडिया के दुरूपयोग की अनदेखी नहीं की जा सकती है। इससे देश की आंतरिक सुरक्षा खतरे में पड़ जाती है। अतः इसके खिलाफ कड़े कानून की सख्त जरूरत है। भारत में साईबर अपराधियों के लिए जो अभी कानून में दण्ड का प्रावधान है वह जुर्म के हिसाब से बहुत कम है। भारत में सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पहले से ही सूचना प्रौद्योगिकी 2008 के दायरे में आते हैं। यदि सोशल मीडिया प्लेटफार्म को अदालत या कानून प्रवर्तन संस्थाओं द्वारा किसी सामग्री को हटाने का आदेश दिया जाता है तो उन्हें अनिवार्य रूप से ऐसा करना होगा। भारत में फर्जी खबर को रोकने के लिये कोई विशेष कानून नहीं है परन्तु भारत में अनेक

वर्तमान समय में सोशल मीडिया गलत इस्तेमाल की वजह से चर्चा में रहा है। एक तरफ भारत सरकार डिजिटल इण्डिया जैसे कार्यक्रम लाकर देश की तस्वीर बदलने का प्रयास कर रही है तो दूसरी तरफ हम इस कार्यक्रम के एक महत्वपूर्ण हिस्से का दुरूपयोग कर देश के लिए चुनौती पेश कर रहे हैं। सोशल मीडिया के दुरूपयोग की अनदेखी नहीं की जा सकती है।

संस्थाएँ हैं जो इस संदर्भ में कार्य कर रही हैं–

- **प्रेस काउन्सिल ऑफ इण्डिया** : एक ऐसी नियामक संस्था है जो समाचार पत्र, समाचार एजेंसी और उनके सम्पादकों को उस स्थिति में चेतावनी दे सकती हैं, यदि यह पाया जाता है कि उन्होंने पत्रकारिता के सिद्धांतों को उल्लंघन किया है।
- **न्यूज़ ब्रॉडकास्टर्स एसोसिएशन** : निजी टेलीविजन समाचार और करेंट अफेयर्स के प्रसारकों को प्रतिनिधित्व करता है, एवं उनके विरूद्ध शिकायतों की जाँच करता है।
- **ब्रॉडकास्टिंग कंटेंट कम्पलेंट काउंसिल** : टी0वी0 ब्रॉडकास्ट्रों के खिलाफ आपत्तिजनक टी0वी0 कंटेट और फर्जी खबरों की शिकायत स्वीकार करती है और उनकी जाँच करती है।

सोशल मीडिया पर फर्जी खबर का मामला केवल भारत तक ही सीमित नहीं है बल्कि दुनिया के दूसरे देश भी इस समस्या से परेशान हैं, एशिया से लेकर पश्चिमी देशों में सरकार द्वारा दण्ड की व्यवस्था की गई है। मलेशिया में फर्जी खबरों को प्रसारित करने वाले दोषी व्यक्ति को छः साल की सजा देने का प्रावधान है जबकि थाईलैण्ड में दोषियों को सात साल की सजा दी जाती है इसके अलावा सिंगापूर, चीन और फिलीपिंस आदि देशों में भी गलत खबरों पर रोक लगाने के लिए सख्त कानून बनाए गए हैं। पड़ोसी देश पाकिस्तान में गलत खबर के जरिए किसी की भावना को ठेस पहुँचाने वाले व्यक्ति को सजा और जुर्माना दोनों का ही प्रावधान है।[16] जमर्नी में भी सोशल मीडिया के दुरूपयोग करने पर सजा देने का प्रावधान है। निष्कर्षतः हम यह कहना चाहेंगे कि भारत में भी सोशल मीडिया के दुरूपयोग करने वाले को कड़ी सजा मिलनी चाहिए। यहाँ परम्परा और आधुनिकता का समन्वय है और यहाँ के व्यक्ति अशिक्षित एवं संवेदनशील हैं। अतः सोशल मीडिया पर प्रसारित किये गये असत्य कथनों को भी सत्य मान कर भ्रमित हो रहे हैं। युवाओं के अंदर नाकारात्मक प्रवृत्तियाँ उभर रही हैं। समाज संक्रमण के दौर से गुजर रहा है। सोशल मीडिया भी बाजारवाद से प्रभावित हो रही है। राजनेताओं द्वारा भी सोशल मीडिया को अपने पक्ष में प्रचार करने को बाध्य कर रहे हैं। अतः भारत जैसे देश में सोशल मीडिया के दुरूपयोग पर कठोर दण्ड का प्रावधान होना चाहिए।

सोशल मीडिया की साकारात्मक उपयोग हेतु सरकार, स्वयंसेवी संस्थाओं, राजनेताओं और सीविल सोसाईटी के लोगों को गंभीरतापूर्वक विचार करना चाहिए ताकि इसके असंयमित उपयोग, दुरूपयोग तथा इसका दुष्प्रचार का माध्यम बनने से रोके। सोशल मीडिया के नाकारात्मक भूमिका से हमें अपने आप को

और समाज को बचाना होगा ताकि युवाओं के मानसिक स्वास्थ्य को दुरूस्त रखा जा सके और एक स्वस्थ्य युवा समाज का निर्माण हो सके। सोशल मीडिया की साकारात्मक भूमिका युवाओं के मानसिक स्वास्थ्य को ठीक रखेगा, इन्हें भ्रमित होने से बचाएगा और सामाजिक वातावरण में शांति एवं सौहार्द बना रहेगा।

संदर्भः

1. मार्लिन कॉम्पबेल ; "सायबर बुलिंग एण्ड ओल्ड प्रॉब्लम इन ए न्यू गेस?" ऑस्ट्रेलियन जर्नल ऑफ गईडेन्स एण्ड काउन्सेलिंग, ऑस्ट्रेलियन एकेडमी प्रेस, 2005.
2. एन0बी0 एलीयन एण्ड सी0एल0 चार्ल्स ; "दी बेनीफिट्स ऑफ फेसबुक फ्रैंड्स, सोशल कैपिटल एण्ड कॉलेज स्टूडेंट्स" यूज ऑफ ऑनलाईन सोशल नेटवर्क साईट्स, जर्नल ऑफ कम्प्यूटर मेडीएटेड कम्युनिकेशन, 12(2017), पृष्ठ– 1143–1168
3. जी0 गर्बनर, एल0 मार्गन एण्ड लिंगनेनोरीली ; "चार्टिंग दी मेनस्ट्रीम : टेलीविजन कॉन्ट्रीब्यूसन्स टू पॉलिटिकल ऑरिएण्टेशन", प्रकाशित लेख, जर्नल ऑफ कम्युनिकेशन, 1982 ; 32(2) पृष्ठ– 100–127
4. टॉमिलसन ; कल्चरल इम्पिरियलिज्म : ए क्रिटीकल इन्ट्राडक्शन, पिन्टर पब्लिशर, लंदन, 1991, पृष्ठ 48.
5. ए0 ज्लाटर ; दी रोल ऑफ दि मीडिया एज एन इंस्ट्रूमेन्ट ऑफ कल्चरल पालिसी, एन इंटर–लेवल फैसीलीटेटर एण्ड प्रमोटर ; एम्सटरडम एण्ड एशियूमेस्ट एसोसिएशन, बूचारेस्ट, 2003, पृष्ठ 1–6
6. कल्पना द्विवेदी ; "डिजिटल प्रौद्योगिकी के जरिए ग्रामीण विकास" प्रकाशित लेख, कुरूक्षेत्र, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, जुलाई 2014, पृष्ठ 19
7. बी0 टेरजी, एस बुलट, एन0 काया, फैक्टर एफेक्टिंग नर्सिंग एण्ड मिडवाईफरी स्टूडेंट्स टूआर्ड सोशल मीडिल, नर्स एडुकेशन, पैक्ट, 2019 पृष्ठ– 35, 141–149
8. प्रो0 राघवेन्द्र प्रसाद तिवारी, "कोरोना संकट और हमारी शिक्षा : कोविड 19 की चुनौतियों के बीच शिक्षा प्रक्रिया में कैसे होंगे बदलाव, अमर उजाला, 12 जून, 2020
9. कल्पना द्विवेदी, "डिजिटल प्रौद्योगिकी के जरिए ग्रामीण विकास" ; प्रकाशित लेख, कुरूक्षेत्र, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, जुलाई 2014, पृष्ठ 17
10. पी0ए0 सम्माजी ; "इम्पैक्ट ऑफ दी मीडिया इन रूरल डेब्लपमेन्ट ; इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मैनेजमेंट एण्ड कॉमर्स इनोवेशन, 102, इश्यू–2, अक्टूबर, 2014, मार्च 2015, पृष्ठ 240
11. स्वाती गुप्ता ; "ए स्टडी ऑन : इम्पैक्ट ऑफ सोशल मीडिया इन रूरल डेव्लपमेन्ट, प्रकाशित लेख ; नेशनल सेमीनार ऑन एक्सलरेटिंग रूरल ग्रोथ : बाई इम्पावरिंग वीमेन थ्रू इनोवेशन एण्ड टेक्नोलॉजी ; आई0 जे0 आर0 टी0 ई0 आर; स्पेशल इश्यू, नवम्बर– 2016, पृष्ठ 67
12. डॉ0 नाज परवीन, सोशल मीडिया और युवा पीढ़ी की मानसिक समस्याएँ, मानसिक स्वास्थ्य प्रत्रिका, अगस्त 29, 2020
13. एम0 डब्ल्यू बेकर, ए0रीम एवं जे0एच0 क्रिस्टोफर, "मीडिया मल्टीटासिकिंग इज एसोसिएटेड विथ सिम्पटम्स ऑफ डिप्रेशन एण्ड सोशल ऐंगजाइटी ; सायबर साइकॉलोजी, बिहेवियर एण्ड सोशल नेटवर्किंग, 16 : नं0 (2), (2013) 132–35, एसेस्ड अगस्त 27, 2015
14. बाखरा स्पीयर्स, मार्लिंग कैम्पबेल, एवं पी0 स्ली, "सायबर बुलीग" परसेप्सन्स ऑफ दी हार्म दे काउजेज टू अदर्स एण्ड टू देयर ऑन मेंटल हेल्थ" प्रकाशित लेख, साईकोलॉजी इंटरनेशनल, दिसम्बर, 2013, बी–34, इश्यू–6 पृष्ठ 613–629
15. गेबरियल हेवीमेन ; दी साईकोलॉजी ऑफ मास– मीडिएटेड टेरेरिज्म अमेरिकन विहेविहरल साईटिस्ट, सितम्बर 2008, वो0–52, इश्यू–1, पृष्ठ 69–86
16. सोशल मीडिया का अनैतिक प्रयोग, दृष्टि, फरवरी 5 , 2019

समय की मार, कोरोना का प्रहार

प्रो0 अरूण कुमार सिंह
मनोविज्ञान विभाग
ए.एन. कॉलेज, पटना।

समय की मार, करोना का प्रहार,
थमी सी सांसें, मच गया हाहाकार।
निर्जन सा जीवन, दिख रहा अंधकार,
मानो लीलने को, मचल रहा दैत्यकार।

भौतिकता की आँधी, ले डूबा है संसार,
दम्भी मानव, अब तो चेतो एकबार।
लिप्सा लालच से लिप्त, करो न भ्रष्टाचार,
धन लोभी संभलो, अब न करो अत्याचार।

छल प्रपंच व धोखा, से न होता पैरोकार,
अन्तर्यामी देख रहे, खुद से हैं शर्मसार।
क्यो दिया बल, शक्ति और चिंतन अपार,
भूल मानवता, कर रहा पाप अपरंपार।

खोया बहुत साथी, संगत व रिश्तेदार,
अब तो तजो, दुष्कर्म का व्यापार।
करो प्रकृति से प्यार, दुलार व मनुहार,
तब ही हो पाएगा जन जन का उद्धार।

करो परिवर्तन, अपना आचार विचार,
मानव मात्र से प्रेम ही, है तेरा आधार।
वन संपदा जीव जंतु, सबसे कर तू प्यार,
तब निश्चय ही होगा, करोना का संहार।

फिर मिटेगा अंधकार, आएगा बहार,
मिल कर सब करते रहेंगे विहार।
खुशियां चहके, घर आँगन के पार,
सब और सुख शांति हो गुलजार।

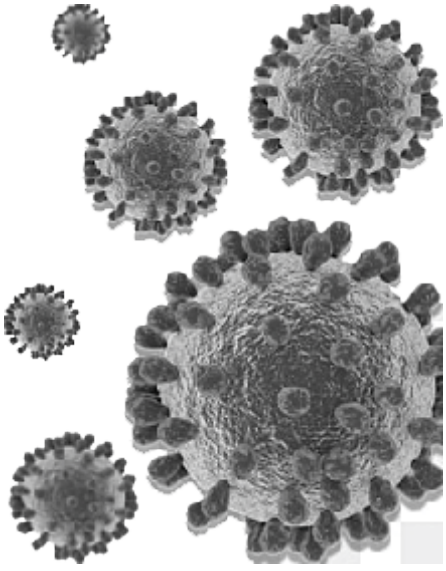

"POETRY OF ESCAPE" OR "ESCAPE POETRY"

Prof (Dr.) Baban Kr. Singh
HEAD, PG-Deptt. of English
A.N.College,
Patliputra University, Patna

The Pre-Raphaelites poets of the Victorian period may be regarded as the worshippers of the principle for 'Art for the sake of Art'. Thus the Pre-Raphaelites have no morality to preach and no reforms to introduce through the medium of their poetry. Love of 'beauty' is their main creed.

There have been sensitive artists who have reacted to ugliness of the world in a manner different from that of those artists who try to grapple with the facts of life for example, the Pre-Raphaelites of the Victorian world reacts strongly against the utilirarian poetry of Tennyson and decide to create 'beauty' for the sake of 'beauty'. The Pre-Raphaelites poets of the Victorian period may be regarded as the worshippers of the principle for 'Art for the sake of Art'. Thus the Pre-Raphaelites have no morality to preach and no reforms to introduce through the medium of their poetry. Love of 'beauty' is their main creed. They aim, both in poetry and painting at perfect form and finish.

To escape from the darkness and ugliness of contemporary society, they turn their eyes to the good old days of Medievalism, when chivalry and knighthood, adventure and heroism were in the air. In fact, the Pre-Raphaelite poetry is a continuation of Romantic poetry headed by Coleridge and Keats particularly in the revival and glorification of the Middle ages. Thus, Pre- Raphaelite poetry may be regarded as an escape poetry.

William Morris is really a paradox, a dreamer bewitched by the glamour of fairy land beyond space and time, and yet a realistic manual worker. This paradox can be understood only when we realize that Morris is so much a realist and vigorous gogetter that he becomes disillusioned of the drabness, the ugliness and the greediness of his times. To find an escape from this life, he turns to the past to the days of Chaucer to the Medieval times. It is because Morris known so much about his times and knows all the bitterness that is associated with it. That he turns his gaze backwards to a remote and distant time to find some relief from the stifling and shocking atmosphere of his age. Thus, Morris is doubly driven to seek escape, not out of the material world into mystic, He moves into the time of Chaucer as one moves into the country and lives their with the happiness of a day-dream but also with the precise clarity of a vision. His poems "Jason" and "Earthly Paradise" are poems of escape, Morris is fascinated by the wonder and fairy like aroma and atmosphere of the Middle Ages. His poem

"The life and death of Jason" presents the finest pictures of the Middle Ages in their heroism, supernaturalism and witchery-land music.

A. C. Swinburne also may be regarded as a poet of escape poetry than a painter of the harsh realities of the world. He is interested in politics and freedom struggle. But this aspect of his poetry has faded from the memory of the readers. He as an artist, a lover of melody for the sake of melody, retains his hold on the memory of the readers. He belongs to the Pre-Raphaelite group of poets. The appeal to the senses is the main characteristic of Pre Raphaelite poetry and Swinburne, no less than Rossetti, is inclined to provide food for the senses. His poem, "The Garden of Proserpine", is highly sensuous.

Edward Fitz-Geral distrainsation of 'Rubbaiyyat of Omar Khayan' is a powerful resentment against the unsatisfactory nature of this world. It embodies the thought that whatever is fated, bound to come and that all the tears and prayers cannot cancel a pre ordained destiny, In such a state of life where much is to be endured, the best way is to eat drink and be merry without caring for the future. He writes :-

Oh, my beloved, fill the cup that clears
Today of past regrets and future fears
Tomorrow! Why tomorrow I may be
Myself with yesterdays seven thousand years.

He says :-

"Unborn tomorrow and dead yesterday
Why fret about them, if to-day be sweet."

Romantic poetry can be regarded as escape poetry in a sense, The Romantics of the 19th century England are dissatisfied with this world. Keats in his poem, "Ode to a Nightingale" points out that this life is extremely unsatisfactory. He says that "But to think is to be full of sorrow". Old people are attacked with paralysis. Young people suffer from wasting diseases, grow pale spectre thin and die. Love and beauty are short-live. But he feels that the world of the nightingale is a better and more satisfying world than this world. He says that the nightingale, living among the leaves, has no known the weariness, the fever and the fret of life. Therefore, Keats feels a desire to go to the world of the nightingale. On the wings of poesy, he reaches the world of the nightingale and feels a desire to die in ecstasy. Keats has nothing to do with the pangs and problems of contemporary life. None of his poems deals with any problem of the world, He loves beauty, In his early poetry, he concentrates his attention on the beauty of lips, cheeks and ripening breasts. His poem 'Sleep and Poetry' shows his preoccupation with the exterior beauty of the objects of nature and human beings. In his poem "Endymion" he says, "A thing of beauty is a joy forever". From this world

he turns his attention to the Middle Ages. The Middle Ages charm him. His poem, 'The Eve of St. Agnes' is a successful creation of the beauty of the Middle Ages. Thus Keats takes refuge in his world of imagination. Keats is not a poet of escape, yet his poetry shows that he has no love for the world, no desire to battle against the evils of life. He creates imaginative world and loves realms of gold.

P. B. Shelley is a revolutionary idealist. He is more of less like Swinburne, He has interest in the things of life. He hates injustice and tyranny. In his poem, 'The Revolt of Islam' he says that time has come for the end of tyranny and injustice. Yet, Shelley loves his visions more that any ugly picture of the world. Shelley writes a very beautiful poetic drama, "Prometheus Unbound". In this drama, he presents a vision of humanity redeemed through 'love'. Shelley in his poem, 'To a Skylark' says that the skylark is a scorner of the ground. Shelley points out the highly unsatisfactory nature of this life. Shelley says-"Our sweetest songs are those that tell of saddest thought". He also says, 'Our sincerest laughter with some pain is fraught"; the life of Skylark is much better than the life of human beings. Shelley points out that hate, pride, and fear govern human life. If human beings can get rid themselves of fear, hate and pride, they will experience the same joy the skylark is feeling. It is true that Shelley wants a transformation of life. Yet, he is fascinated more by his visions than the world.

In this way, escape poetry has been composed in different ages. In 20th century also poets like Ernest Dawson composed escape poetry. Walter De La Mare's imagination loves to dwell either in the past or in the world of imagination. He loves to create charming atmospheric effects. He has created a very successful effect of the super-natural in his poem "The Listeners". The Elizabethan period has also some poems which can be regarded as escape poetry. For example, spenser's pastoral "The Shepherd's calendar is nothing but a poem of escape.

Escape poetry is partially satisfying. It can appeal only to those people who are free from cares and anxieties of life and who can afford to indulge in the luxury of sweet imagination. The poem "The Lotus Esters', of Tennyson creates a land of inactivity. Its atmosphere is so langurous that people take lotus and enjoy sweet sensations. The lotus-land is a land for the luxurious and the comfortable. But for the struggling humanity, battling against all kinds of evil and struggling to get bread, escape poetry has no meaning. Keats says :-

"Adieu! the fancy cannot cheat so well
As she is famed to do, deceiving elf."

Modern poetry, by and large, is poetry oppressed by the hard realities of life. At present, there are crises of many kinds. Today no poet can afford to neglect reality. Therefore, escape poetry has a limited appeal. ◉

कोरोना काल : संवादहीनता की समस्या

चतुर चिकित्सक द्वारा रोग का निदान, उपयुक्त औषधि और पथ्य आदि का उपयोग स्पष्ट है परंतु रोगी की स्वास्थ्य इच्छाशक्ति, वातावरण का अनिर्वचनीय सम्राज्य, सेवा करने वाले का हृदयगत स्नेह, सद्भाव आदि उपयोग में अप्रत्यक्ष होने के कारण कम महत्वपूर्ण है, यह कहना अपनी भ्रांति का परिचय देना होगा।

प्रो॰ कलानाथ मिश्र
हिन्दी विभाग
ए.एन. कॉलेज, पटना

मनुष्य की स्वाभाविक अनुभूतियाँ जीवन की वास्तविकताओं, संघर्षों, जद्दोजहद, हास–विलास के बीच उसके अंतर्मन को झकझोरती रहती हैं। ये अनुभूतियाँ मानव की संवेदनाओं को जागृत करती हुई अंतर्मन में संचित होती रहती हैं। इस प्रकार जीवन के कटु–मधुर अनुभव हमारे अहसास बनते हैं। ऐसी बहुत सारी अनुभूतियाँ हैं जो विभिन्न रूपों में अभिव्यक्ति पा लेती हैं, और कुछ ऐसी भी हैं जो अव्यक्त ही रह जाती हैं। समस्त अनुभूतिजन्य ज्ञान को शब्दों में अभिव्यक्त करना कठिन होता है। अनुभूतियों का साहित्य में कई रूपों में प्रयोग हुआ है। यथा भावानुभूति, रसानुभूति, लौकिक अनुभूति, अलौकिक अनुभूति, प्रत्यक्षानुभूति, रहस्यानुभूति, काव्यानुभूति आदि। हम जब इन अनुभूतियों को भाषा में व्यक्त करते हैं तो उसकी अभिव्यक्ति में भाव, भंगिमाओं का विशेष महत्व होता है। भाषा संप्रेषण में विभिन्न मुद्राओं, चेहरे की अभिव्यक्ति, इशारों और आँखों की गति का विशेष महत्व होता है। मनुष्य अनजाने में ही इस तरह के संकेत भेजता भी है और समझता भी है। बिना इसके अभिव्यक्ति पूर्णता को प्राप्त नहीं करती है।

वर्ष 2020 कई मायनों में अलग रहा। वर्ष के आरंभ में ही कोरोना महामारी ने मनुष्य को आक्रांत कर दिया। समस्त जीवन व्यापार जैसे उसकी गिरफ्त में आ गया। यह बदस्तूर 2021 में भी जारी है। व्यक्ति ने व्यक्ति से दूरियाँ बना ली। दो गज की दूरी ने सामाजिक दूरियों का रूप धारण कर लिया। मनुष्य के मुँह पर मास्क लग गया और इसके साथ ही अभिव्यक्ति की अनेक भाव भंगिमाएँ उस मास्क में दबकर विलीन हो गये। हम जब सहज होकर मिलते हैं, तो हमारी कायभाषा बहुत कुछ कहती है। संबंधों के निर्वहन में संवाद की और संवाद में भाव–भंगिमाओं की अहम भूमिका होती है। एक–एक स्पर्श का, एक–एक मुद्राओं का विशेष संवाद होता है। मनुष्य सामाजिक जीव है अतः समाज से जुड़े रहना आवश्यक है। अतः ऐसी स्थिति में हमें भाषा संप्रेषण में भाव–भंगिमाओं के महत्व को जानना भी जरूरी है। यह भी जानना जरूरी है कि

समुचित भाव भंगिमाओं के अभाव में संपूर्ण संवाद कैसे किया जाय? ऐसी स्थिति में साहित्यिक संवाद की भूमिका अहम हो जाती है।

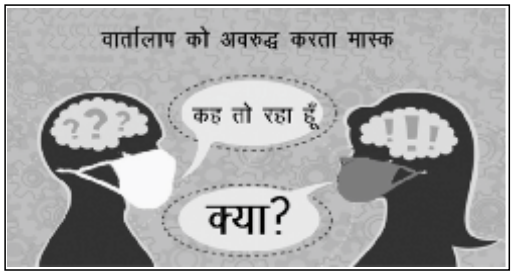

मुखावरण (मास्क) ध्वनि को दबा देता है, जिससे वक्ता के कथन और कुछ आवाजों को समझना अधिक कठिन हो जाता है। ध्वनि का आरोह–अवरोह बाधित हो जाता है जिससे स्पष्ट संवाद संप्रेषित नहीं हो पाता।

मास्क हमारे होठों को पढ़ने और चेहरे के भाव देखने की क्षमता को छीन लेते हैं, जिससे हमें वाणी को सही ढंग से समझने में कठिनाई होती है। प्रश्न उठता है या संशय होता है कि जो हम सुन रहे हैं क्या वही आशय है? इसलिए हम शब्द दुहराते हैं या पूछते हैं।

बलाघात या आवाज़ दबे आवाज के कारण लोगों के लिए मास्क के साथ बोलना कठिन हो सकता है। इतना ही नहीं वृद्ध लोगों या श्रवण यंत्र पहनने वाले लोगों के लिए मास्क असहज हो सकता हैं।

वस्तुतः भाषा संप्रेषण में विभिन्न मुद्राओं, चेहरे की अभिव्यक्ति, इशारों और आँखों की गति का भी विशेष महत्व होता है। मनुष्य अनजाने ही बातचीत के क्रम में इस तरह के संकेत भेजता भी है और समझता भी है। काय–भाषा किसी के रंग–ढंग, तौर–तरीके और उसकी मनःस्थिति के बारे में संकेत देती है। हाथ हिलाना, उँगली से इशारा करना, छूना और नजर नीचे करके देखना ये सभी अमौखिक संचार के रूप हैं। बच्चे माँ का स्पर्श पाकर बेहद सुरक्षित महसूस करते हैं। सामान्य रूप से निराश व्यक्ति की पीठ पर हाथ फेरकर उसे संबल दिया जाता है। यह स्पर्श पाते ही वह आश्वस्त होता है और महसूस करता है कि इस कठिन परिस्थिति में भी कोई उसके साथ खड़ा है। पीठ थपथपाने से मनुष्य उत्साहित अनुभव कराता है। यह किसी की सफलता पर बधाई देने और प्रोत्साहित करने का सशक्त मध्यम है। भारत में चरणस्पर्श सम्मान और आदर प्रकट करने का सर्वकालिक और सर्वमान्य तरीका है। यह हृदय के सम्मान और श्रद्धा को बखूबी जाहिर कर देता है। मिलने पर कभी अह्लाद से भर किसी मित्र से गले मिलना अथवा किसी के कंधे, पीठ पर हाथ रखना अथवा एक जीवंत मुस्कान के साथ किसी मित्र के समक्ष प्रस्तुत होना भी आपसी संवाद के

मुखावरण (मास्क) ध्वनि को दबा देता है, जिससे वक्ता के कथन और कुछ आवाजों को समझना अधिक कठिन हो जाता है। ध्वनि का आरोह–अवरोह बाधित हो जाता है जिससे स्पष्ट संवाद संप्रेषित नहीं हो पाता।

महत्वपूर्ण घटक हैं। किन्तु मास्क ने इन मुस्कानों के विभिन्न संकेतों को अवरुद्ध कर दिया है। हम जानते हैं कि अलग–अलग किस्म के मुस्कान अलग–अलग संकेत देते हैं। उदाहरण के लिए–'हास', 'अंतर्हास', 'विहास', 'सुहास', 'मंदहास', 'स्मित', 'मुस्कान', 'विंहसना' आदि होठों की अनेक भंगिमाएँ अदृश्य हो गईं हैं।

लंबे अंतराल के बाद भेंट होने पर किया गया आलिंगन, प्रेम और मिलन की खुशी को जाहिर करता है। वहीं विरह और शोक से पीड़ित व्यक्ति को गले लगा लेना उसकी ओर सहानुभूति प्रेषित करने और यह कहने (मैं हूँ न!) का सर्वोत्तम माध्यम है। किसी बीमार के हाथ पर हाथ रखना उसके लिए मात्र एक संबल ही नहीं होता बल्कि एक बड़ा आश्वासन होता है, जो उसके प्रति हमारे शुभचिंतन को, शुभेच्छाओं को उस बीमार तक पहुँचाता है। इस संबंध में प्रसिद्ध कवयित्री महादेवी वर्मा की यह उक्ति ध्यान देने योग्य है।

''रोगी की व्याधि विशेष के लिए शास्त्र विशेष उपयोगी हो सकता है, परंतु उसके सिरहाने किसी सहृदय द्वारा रखा हुआ अध–खिला गुलाब का फूल भी कम उपयोगी नहीं। अपनी वेदना में छटपटाता हुआ वह उस फूल की धीरे–धीरे खिलने और हौले–हौले झड़ने वाली पंखुड़ियों को देख–देख कर, कै बार विश्राम की सांस लेता है, किस प्रकार अपने अकेलेपन को भर देता है, कितने भावों की सम–विषम भूमियों के पार आता–जाता है और कैसे चिंतन के क्षणों में अपने आप को खोता–पाता है, यह चाहे हमारे लिए प्रत्यक्ष ना हो, परंतु रोगी के जीवन में तो सत्य रहेगा ही। चतुर चिकित्सक द्वारा रोग का निदान, उपयुक्त औषधि और पथ्य आदि का उपयोग स्पष्ट है परंतु रोगी की स्वास्थ्य, इच्छाशक्ति, वातावरण का अनिर्वचनीय सम्राज्य, सेवा करने वाले का हृदयगत स्नेह, सद्भाव आदि उपयोग में अप्रत्यक्ष होने के कारण कम महत्वपूर्ण है, यह कहना अपनी भ्रांति का परिचय देना होगा।''

इस महामारी काल में जब संवेदनाओं की अभिव्यक्ति, तीमारदारी की सबसे अधिक आवश्यकता है तब मरीज अपने स्वजन से दूर नितांत अकेला अपने कष्ट को झेलने को मजबूर है।

आलिंगन पर भी इस महामारी काल में प्रतिबंध लग गया। कई अवसरों पर आलिंगन का, गले मिलने का एक विशेष संदेश होता है। जैसे एक दीर्घ अंतराल के लिए विदा होते समय किया गया आलिंगन पुनः मिलन, संबंधों की दृढ़ता का संबल देता है। यह आलिंगन कहता है कि मुझे तुम्हारी फिक्र है। यह सुखद भविष्य के लिए की गईं शुभकामनाओं का भी द्योतक है।

वस्तुतः स्नेहपूर्ण स्पर्श–भाषा का उपयोग तब और आवश्यक होता है जब आप किसी अन्य व्यक्ति के प्रति स्नेह या आत्मीयता की भावना व्यक्त करना चाहते हैं। यह परस्पर संबंध के लिए महत्वपूर्ण होता है।

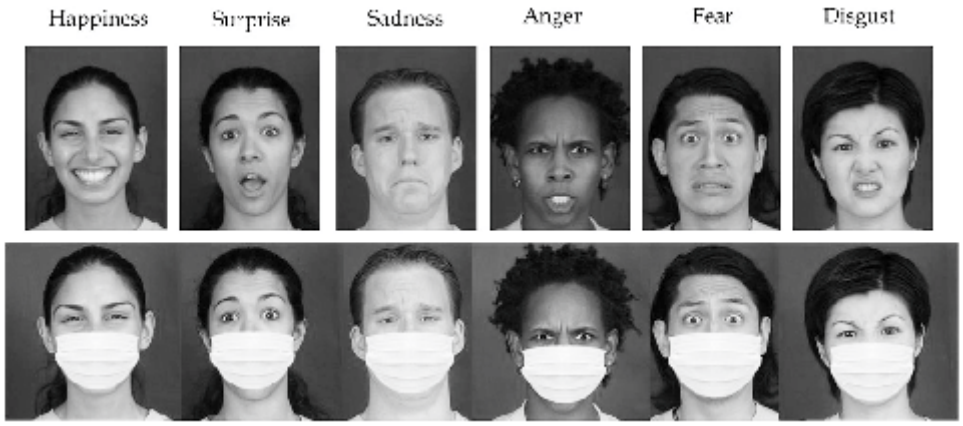

हम जानते हैं कि अलग–अलग किस्म के मुस्कान अलग–अलग संकेत देते हैं। उदाहरण के लिए– 'हास', 'अंतर्हास', 'विहास', 'सुहास', 'मंदहास', 'स्मित', 'मुस्कान', 'विंहसना' आदि होठों की अनेक भंगिमाएँ अदृश्य हो गई।

स्पर्श भाषा का उपयोग एक चिकित्सीय विधि के रूप में भी किया जा सकता रहा है। किन्तु यह इतना कठिन दौर है कि डॉक्टर भी मरीज का स्पर्श करने से कतराते हैं। अतः संप्रेषण को सबल सशक्त बनाने में कायभाषा (शारीरिक भाषा) की महत्वपूर्ण भूमिका है।

इस महामारी के प्रकोप से हमारा मिलना जुलना कम हो गया। मनुष्य से मनुष्य की दूरियाँ बढ़ गई, अभिव्यक्ति की सबसे सशक्त माध्यम, मुँह को ही ढ़कना पड़ गया और इसके साथ ही इन समस्त हार्दिकताओं की अभिव्यक्ति में शिथिलता आ गयी। जब मनुश्य को अपनों की संवेदना की जरूरत सर्वाधिक है ऐसी स्थिति में उसे अभिव्यक्त करना कठिन हो गया है।

सामान्यतः जब हम बोलते या सुनते हैं तो हमारा ध्यान मूल रूप से शब्दों पर होता है। शारीरिक भाषा पर उतना ध्यान नहीं होता क्योंकि हम अभ्यासवश संवाद के साथ ही करते हैं। सायास नहीं करते। हम स्वतःअपनी भाव–भंगिमाओं से कई ऐसे संदेश देते है जो हमारे शब्दों का समर्थन करते हैं उसे स्पष्टता प्रदान करते हैं और संप्रेषण को सशक्त तथा संपन्न बनाते हैं। श्रोता या दर्शक शाब्दिक और गैर शाब्दिक, दोनों संकेतों पर एक साथ ध्यान देते हैं। यह संवाद की स्पष्टता और संपर्क स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। बातचीत के दौरान हावभाव से तात्पर्य, शारीरिक संचलन से होता है। जो बातचीत में निहित अनेक अर्थों को अभिव्यक्त करता है। इनमें सिर, चेहरा एवं आँखों के संचलन भी शामिल होते हैं। आँख मिचकाना, झपकाना एवं गोल करना आदि शामिल हैं। पर कोरोना काल में मास्क के अवरोध के कारण संवाद में भी व्यवधान उत्पन्न होता है। ऐसी स्थिति में कई मुहावरे अर्थहीन लगने लगे हैं। यथा 'दाँत निपोरना', 'दाँत दिखाना', 'बत्तीसी निकालना, 'नाक भौं चढाना', 'दाँत तले उँगली दबाना', 'मुँह उतरना' (उदास होना) आदि विशिश्ट मुहावरे मास्क में दम तोड़ रहे हैं। हाथ नहीं मिलाना है तो 'मुट्ठी गरम करना'

आलिंगन पर भी इस महामारी काल में प्रतिबंध लग गया। कई अवसरों पर आलिंगन का, गले मिलने का एक विशेष संदेष होता है। जैसे एक दीर्घ अंतराल के लिए विदा होते समय किया गया आलिंगन पुनः मिलन, संबंधों की दृढ़ता का संबल देता है। यह आलिंगन कहता है कि मुझे तुम्हारी फिक्र है। यह सुखद भविष्य के लिए की गई शुभकामनाओं का भी द्योतक है।

भी कठिन हो गया है।

दो गज की दूरियाँ रखते–रखते एक प्रकार से अनचाहे ही सामाजिक दूरियाँ बनती जा रही है। ऐसी स्थिति में शब्द की जिम्मेदारी बढ़ जाती है। अब अपनी भावना को बिना विशेष भाव भंगिमा के स्पष्ट रूप से संप्रेषित करने के लिए शब्दों का विशेष चयन आवश्यक हो गया है। उन भावनाओं को जो पहले शब्दों के साथ–साथ अनेक भंगिमाओं के माध्यम से अभिव्यक्त होता था उसे अब मात्र शब्दों के द्वारा अभिव्यक्त करना होता है। अतः सटीक शब्दों का चयन करना आवश्यक हो गया है, ताकि संबंधों के बीच दरार उत्पन्न न हो। सही शब्दों का चुनाव नहीं होने से गलतफहमी होने की भी संभावना रहती है। संबंध को बनाए रखने के लिए भाव संप्रेषण आवश्यक है। इसके लिए बातचीत करना आवश्यक है। सामने वाले के प्रति हार्दिकता, सम्मान, स्नेह, प्रशंसा अथवा अपेक्षा दर्शाने के लिए उनसे बात करें, सही संदर्भ में भाव संप्रेषित करने हेतु सही शब्दों का चयन अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसके साथ ही भाषा की ध्वन्यात्मकता, शब्द के उच्चारण, आरोह–अवरोह, उतार–चढाव, बलाघात पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है।

कहानियों की भाषा, साहित्य की भाषा, विशिष्ट संवाद शैली का चयन हमारी बातचीत को रुचिकर, अर्थ संपन्न और सशक्त बना सकता है। अतः साहित्य में उद्धृत ऐसे प्रसंगों को ध्यान से पढ़े और उनमें निहित भावाभिव्यक्ति पर ध्यान दें क्योंकि शाब्दिक संप्रेषण कोरोना काल में संबंधों के निर्वहण का एकमात्र सशक्त माध्यम है। शब्द ही वह माध्यम है जो इस सामाजिक दूरियों के बीच भावात्मक दूरियाँ पनपने नहीं देंगे।

A poor bill for the "POOR"

Bimal Prasad Singh
Professor, Deptt. of Pol.Sc.
A.N. College, Patna

This time the reservation is over and above caste system thus providing it to people having criteria such as annual income of less than eight lakhs or people who own less than five acres of farm land, or people who own a house lesser than one thousand square feet in a town (or 100 square yard in a notified municipal area).

The 103rd Constitutional Amendment Act introduced special measures and reservations for the 'economically weaker section' of the society in public employments and education system. While called a political gimmick, the 124th Amendment Bill was passed unopposed by both the houses and received President's assent on January 12, 2019. This amendment which is supposed to bring our constitution one step closer to its function of providing equality to all the sections of citizens of India, its implementation will highlight the major challenges to the core constitutional question on equality.

This time the reservation is over and above caste system thus providing it to people having criteria such as annual income of less than eight lakhs or people who own less than five acres of farm land, or people who own a house lesser than one thousand square feet in a town (or 100 square yard in a notified municipal area). The Union Cabinet's approval to provide 10 percent reservation for upper caste (the unreserved category) had already run into a legal battle, challenged in the Supreme Court with regard to the historical judgment in the Indra Shwaney case. A nine- judge Constitutional Bench of the Supreme Court case had capped the reservation at 50 per cent in that case. The court had ruled on November 16, 1992, that clause (4) of Article 16 of Constitution speaks of "adequate representation" and "not proportionate representation" and "relaxation can be done in extra-ordinary situations, and while doing so, extreme caution has to be exercised and a special case made out." While this was the case during Narsimha Rao government which wanted to provide 10 percent reservation just by pushing through notification relying on Mandal commission but, this time, the constitutional basis is being given to this amendment by amending Article 15 and 16 of our constitution. Article 15, which prohibits discrimination on the grounds of race, religion, caste, sex or place of birth, now stands amended, enabling states to take special measures (not limited to reservations) in favour of EWS generally with an explicit sub-article on admissions to educational institutions. The amendment to Article 16 which

While this amendment has been welcomed by Indian citizens from all walks of life and is being called a long due step of the government, it contains its own drawbacks, which need to be reviewed by all the bodies of the governments to realize its proper aims and objectives.

prohibits discrimination in employment in government offices states 10 percent reservation (and not special measures) for EWS in public employment and does so in manner that it is different from reservations for Schedule caste/ Schedule Tribes and Other Backward Classes. It also makes a note of Article 46, which asks the government to promote the educational and economic interests of the weaker sections of the society.

While this amendment has been welcomed by Indian citizens from all walks of life and is being called a long due step of the government, it contains its own drawbacks, which need to be reviewed by all the bodies of the governments to realize its proper aims and objectives. The word "*Economic Weaker*" is ambiguous in itself. It is impertinent questions that how one can define which section of Indian population living in different parts of India belongs to economic weaker sections of society. Economically, the weak are those who do not pay income tax or are earning not more than two lakhs or in the range of it. In fact, eligibility criterion for 'economic weakness' has been devised in such a way that it appears to cover almost all Indians barring the top upper crust, of, may be just three per cent. The amendment which defines economic weakness extends to as broad as the category as the person's with basic salary of 8 lakhs rupees per annum which becomes equivalent toa person's monthly income of 60,000 rupees approximately. This monthly income can be called a descent salary if a person lives in a small town of any Indian states and is sure to have all his needs fulfilled. This man or his relation will be competing with a man whose annual salary can be less than 40 thousand per annum or even less. Moreover, in a country like India where the exercise of identifying BPL is fraught with errors and those who do not belong to such categories can take advantage of the scheme, reservation is still a more advantageous chance. In the same way, reservation on the basis of land acquisition of less than 1,000 hectare cannot be one of the criteria of reservation. The value of land depends on the place it is located in, for example a land of 900 hectare in a locality such as South Bombay can be a profitable scheme of the land owner. The next criterion which has been brought into question is reservation on the basis of ownership of farmland. This criterion which has been included in this amendment can be seen as a step to bring an end to agrarian

crisis. Reservation can, to some extent, solve the problem of poverty to farmers, but cannot eradicate their poverty altogether. To end the miseries of farmers, the government needs to go at grass root level, where sincere schemes for farmers are needed which does not only coincide with elections. With so many inequalities which become the basis of criteria for this amendment the question of equality in opportunities becomes debatable.

These debatable questions could have had fewer challenges if at all it would have been debated in either house of the Parliament. The Bill was rushed through in forty-eight hours without scrutiny by a parliamentary committee and without public debate. The rules of procedure of the Lok Sabha requires every Bill to be circulated at least two days ahead of introduction giving time to the MPs to read the Bill and discuss it but it was just done in one day's time. Even in Rajya Sabha the bill was passed with its debate starting at 2 p.m. and ending at 10 p.m. A motion was moved by some members to refer the Bill to select committee, but this motion was defeated by a wide margin, and the bill was then passed. The laxity seen in both houses has failed to see some important questions one which is poverty has a structural causes, the biggest one in India being caste. Poverty is a symptom of structural barrier the caste system imposed to accessing resources. Reservations are not charity but a means to ensuring parity for those who have been denied opportunity. But when reservations are reduced to purely "economic" criteria, it becomes charity. Striking down quotas for poor among the upper castes, the verdict in Indra Shawney case noted that, "a backward class cannot be determined only and exclusively with reference to economic criterion. It may be a consideration or basis along with additional social backwardness, but it can never be sole criteria...." Our Constitution aimed at reservation for those people who have been wronged in our history and this becomes the basis of equality. The question of reservation given on the basis of class becomes a temporal question. One can belong to economic weaker section of the society at one point of time and can rise to the upper crust at the other.

Though Modi government has asked public schools and colleges to extend the supply sides of seats to fit in more students who are going to enter these schools and colleges after

If we look from broader perspective, reservation was introduced in our Constitution to end the problem of social backwardness and bring all citizens at par with each other. Till today, when India is celebrating its 70th Republic Day, can we completely accept that it has solved the problem for which it was introduced.

It is rightly said "it is better to teach a person how to fish than giving him a fish to eat" and reservation is doing just that, it is giving the person a fish for a day rather than teaching him how to fish.

the 10 per cent quota, but the question arises whether the increment of seats bring an end to all our miseries. Increased seats cannot increase our infrastructure or get us more qualified teachers. Even when we are able to fill up these gaps, the main question asked by Congress communication chief, Randeep Surjewala addressing the press conference after the decision of quota for the unreserved "Where are the jobs?" validates the downfall of public jobs in last two decades. The ten percent quota will lose its objective if we don't have enough government jobs. With decline in government jobs as recently reported that the central employees declined from 16,90,741 to 15,23,586 from 2014 to 2017 respectively, it will again generate jobs to the upper crust of each reserved caste who have been generating profit from primary level, thus nullifying the agenda reservation for an inclusive society. Moreover, reservation at every step would let lose the interest of those people from unreserved category who are genuinely aiming for those government colleges or jobs thus leading to its further degradation. At present, we see PSUs are at huge losses, much of which credit can be given to reservation and further reservations are sure to incur more losses.

If we look from broader perspective, reservation was introduced in our Constitution to end the problem of social backwardness and bring all citizens at par with each other. Till today, when India is celebrating its 70th Republic Day, can we completely accept that it has solved the problem for which it was introduced. There can be two major reasons that can be quoted for objectives of failure of reservation: one being its improper implementation, and second that it was never the answer to social backwardness. Its implementation was a failure as it did not reach the places, the grass root level, which it aimed for, or if it reached it was given to the same group of people again and again, who had already been benefitted from it. This indirectly proves that reservation at this point of time after 70 years of its implementation, is not the only answer to social backwardness, but a lazy way in part of government to create an illusion in the mind of its people that it is solving the inherent problem of social discrimination. To prove this, let us take an example of a dalit child or any other child living at some part of the village belonging to a low working class family. 'Will he be going to school when his family needs him to work to solve the problem of bread for the

next meal?' the government needs to ask itself, and even if chances are good and the child does go to a government school, what is the kind of education that the child is getting is the next big question that needs to be asked for. According to the Annual Status of Education Report published recently which states that 50% of children in class 5 and 73% in class 8 can read Class 2 text. Only 44% of class 8 children can do simple division. With this kind of education, one is sure that the child will not be getting into any college or jobs thus stagnating him to the place from where he started. Furthermore, if the child gets any place with those limited education, the person is sure to demean the status of the place. Thus, reservation which was brought in for a god purpose has become a lazy step taken by government to hide its laxity, and make it an advantage for its vote bank. Steps should be taken by government to make India's growth an inclusive process reaching out to every nooks and corners with its scheme which is beyond this lazy step of easily providing for those who can learn to fetch the opportunity with little amount of good help provided to them at primary level. It is rightly said "it is better to teach a person how to fish than giving him a fish to eat" and reservation is doing just that, it is giving the person a fish for a day rather than teaching him how to fish. This easily accessible opportunity hinders a person's mobility to go through the whole process to upgrade himself mentally, which helps a person to transform himself into a more qualified person for that job. In this case, reservation loses its purpose of establishing equality among each and every person, not only economically but also socially and mentally. At this point of time where everybody feels the need of reviewing the reservation, this 10 per cent quota further clouds our vision of creating a more equal society.

References

[1] Deshpande, Ashwini and Thomas Weisskopf (2010): "Does Affirmative Action Affect Productivity in the Indian Railways?," Working Paper No 185, Centre for Development Economics, Delhi School of Economics, Delhi.

[2] Despande, Satish (2013): "Towards a Biography of the 'General Category':Caste and Castelessness," Economic and Political Weekly, Vol. 48, Issue No. 15, 13 April.

[3] Hindu daily news paper

- Movements as Politics: Bhima Koregaon in the Times of Hindutva by Anagha Ingole
- Dalit Women Talk Differently: A Critique of Difference and Towards a Dalit Feminist Standpoint Position by Sharmila Rege
- Caste and Castelessness: Towards a Biography of the 'General Category' by Satish Deshpande
- Archaeology of Untouchability by Gopal Guru
- Can We De-Stigmatise Reservations in India? By Ajay Gudavarthy
- The 'Non-Brahmin' Cook from Pune and the Myth of the 'Caste-less' Middle Class by Vidula Sonagra and Nachiket Kulkarni
- Does Art Have a Caste? A Debate on Carnatic Music
- Caste in 21st Century India: Competing Narratives by Amaresh Dubey and Sonalde Desai
- Explicit Prejudice: Evidence from a New Survey by Diane Coffey, Payal Hath, Nidhi Khurana and Amit Thorat

IMMUNITY

NEED OF THE HOUR

A person may develop or acquire immunity after the birth. The acquired immunity is not inherited but it is a specific resistance to infection developed during the life of the individual.

Prof. Preety Sinha
HOD, Deptt. of Zoology
A.N. College, Patna

Immunity is the ability of our body to specifically counteract with foreign organisms or substances. The immune system is a remarkably versatile defense system that has evolved to protect us from invading microorganisms and cancer. Our immune system is able to generate an enormous variety of cells and molecules capable of specifically recognizing and eliminating limitless varieties of foreign invaders. These cells and molecules act together.

Immune system functions in two related activities: **recognition and response.**

Once a foreign organism has been recognized, the immune system recruits a variety of cells and molecules to mount an appropriate response called effective response. This response helps to eliminate or neutralize the organism. In this way the system is able to convert the initial recognition event into a variety of effective responses, each uniquely suited for eliminating particular type of pathogen. There are two types of immunity in our body: Innate and Acquired.

1. Innate immunity or natural immunity- Natural immunity is also known as innate

immunity or inherited immunity. Innate immunity provides the first line of defense against infection. The extent of natural immunity differs in different individuals.

2. Acquired immunity or adaptive immunity- Acquired immunity is developed during the lifetime of an individual and refers to the immunity, which a specific individual displays against a specific pathogen. This is frequently related to the presence of antibodies in the blood.

A person may develop or acquire immunity after the birth. The acquired immunity is not inherited but it is a specific resistance to infection developed during the life of the individual. It is a type of immune defence that develops over time through immunological memory. This means that after exposure to a certain antigen or pathogen, the adaptive immune system develops antibodies to fight that antigen. As a result, the immune system is then ready to produce these same antibodies anytime in the future when exposed to the same pathogen because it has "immunological memory".

We can boost our immunity by following a few changes in our lifestyle.

1. Healthy dietary habits:

Our diet plays a critical role in immune health and this makes healthy eating and balanced nutrition extremely important. The best way to do this is by limiting our intake of processed foods that are high in sugar, sodium and trans fats, while increasing our consumption of whole foods.

This means that we should eat lots of fresh fruits and vegetables, whole grains, legumes, lean protein and healthy fats. Such a diet is highly recommended in Ayurveda to boost our immunity and strengthen our health as these foods can provide us with a range of nutrients as well as antioxidants and phytochemicals that are known to strengthen immune function.

2. Exercise regularly:

Taking up a regular exercise routine or engaging in physical activities like yoga is regarded as essential for ourwell being. It also plays an important role in boosting our immunity. A sedentary lifestyle with low levels of activity is known to impair immune function, increasing the risk of infections. However, over-exercising can also cause low immunity.

3. Sleep well:

Sleep has a direct impact on the immune system. Inadequate or poor-quality sleep is linked to a higher susceptibility to sickness. Today, with our fast-paced lifestyles and focus on productivity, most of us get inadequate sleep. This is regarded as one of the

main causes of a weak immune system and increased susceptibility to infections.We should aim for 8 hours of good quality sleep.

4. Manage Stress:

Despite the conveniences of modern technology, we are more stressed than ever before because of the growing pressure to perform at work, balance relationships and manage finances. This constant exposure to high levels of stress makes us vulnerable to chronic stress disorders and this is known to adversely impact immunity.Activities that may help us manage our stress include meditation, exercise, yoga, having a good laugh, positive thinking and other mindfulness practices.

5. Stay Hydrated:

Increasing our intake of water and fluids isnot going to directly boost our immunity, but dehydration can weaken immunity. Poor water intake is associated with headaches, digestive problems, loss of focus, heart, and kidney diseases, all of which make us more vulnerable to infections.

Most importantly, water is the main component of lymph, which is the fluid that flows through the lymphatic system and carries immune cells through the body. To maintain adequate hydration, make it a point to drink water and consume fresh fruits or veggies with high water content, while avoiding caffeinated, aerated and alcoholic beverages.

''अनुग्रह बाबू वीर, कर्मठ और त्यागी पुरूष थे। ऐसा उदार हृदय वाला प्यार और स्नेह से भरा हुआ व्यक्तित्व मैंने दूसरा नहीं देखा। सादगी की तो वे सच्ची प्रतिमा ही थे। मुझे उनके जीवन से बड़ी प्रेरणाएँ मिलीं है।''

–: लाल बहादूर शास्त्री

Gandhian Philosophy and Challenges of COVID 19

PROF. TANUJA SINGH
(POST-DOC-SIS, JNU, Research Award-JAMIA MILLIA ISLAMIA, NEW DELHI, Research Associateship, P G Dept, PU)
FORMER HEAD, DEPTT. OF POLITICAL SC., A.N. COLLEGE, PPU

DR SATYAJIT SINGH
RESEARCH SCHOLAR & VISITING FACULTY

Mahatma Gandhi's principles needs no endorsement from any government because his principles have inspired humanity across the globe time immemorial. He not only inspired leaders in various countries like Nelson Mandela and Martin Luther King, but a large number of people from almost every walk of life. He remains one of the tallest figures of the 20th century to have left his imprint on human history, an imprint that mankind continues to follow subsequently in the 21st century. The celebration of his 150th birth anniversary and so is an occasion to not just remember him but is an opportunity to invoke his principles in these times of world crisis that politics is promoting in India and in many parts of the world.

Faced with the present crisis, what should we do? In the broader prospect, First, Gandhi would not merely preach, he would have acted and practised himself. Be the change you want to see in the world - his first directive for the world. Second, he would have started action locally, not chased the world to change it. He was known to be able to see the Earth in a grain of sand. Third, he would have begun with actions that initially looked small and silly. Picking a fistful of salt, for example, that eventually changed history. The best way to find yourself is to lose yourself in the service of the others. These were the main philosophy behind his action for the emancipation of humanity which is relevant for time immemorial. The world is facing unseen challenges of pandemic. The new normal is really abnormal. Gandhi's philosophy that "greatness of humanity is in being humane" is the sole guiding force today. There is need of Gandhi again and actually the world needs to follow again the basic philosophy of his principles he visualized long back to save the humanity in this 21st century.

While talking about the relevance of Gandhi, Martin Luther King Jr. (1929-1968) once expressed his opinion in these words; "Gandhi was inevitable. If humanity is to progress, Gandhi is inescapable. He lived, he thought and he acted inspired by the vision of humanity evolving towards a world of peace and harmony. We may ignore Gandhi at our own risk"1. Mahatma Gandhi (2Oct, 1869-30 Jan, 1948) was not a methodical philosopher but a man of action and a world leader who commanded considerable influence over millions. Like Buddha and Socrates, Gandhi stressed only certain basic values. He didn't systematically elaborate the essential philosophical postulations and the sociological, political and economic implications of his theories at an advanced intellectual level. However, he certainly had emphatically put forward certain fundamental ideas for the regeneration of mankind and the reconstruction of society and politics and in this sense he could be regarded as a moral, social, economic and political- thinker & more a world leader.

As is well known, Gandhi has often been described as a saint among politicians and as a politician amongst the saints. Gandhi is, in fact, an enigma. He is a Mahatma for many who see him more as a spiritual figure. Some find him a great politician who used religion as a strategy to mobilize millions for his political ends. Howsoever, we may like to look at Gandhi, we cannot deny that he was a politician to the core but one who also believed that - politics cannot be devoid from basic moral principles- rooted in one's faith.

His greatness lies in his towering character, his political & moral leadership, his inner intuitive experiences and his universal message of -Truth and Non-violence. He was also a prolific writer of force and power. His writings touched almost every issues –most of the social, educational, cultural, economic and political problems of the contemporary world. Although not a system-builder in the academic sense of term, Gandhi had expressed many ideas, which are highly relevant even today in this modern age.

The Legacy of Gandhian Philosophy :

It is widely accepted that the core of the legacy Gandhi left for humanity, is that he taught the world that - Truth is greater than all worldly possessions. And that slavery, violence, injustice and disparities are just inconsistent with Truth. What Gandhi left - is a carefully evolved vision of an organically sound, naturally supportive and an independent world order. The six decades of Gandhi's public life in six continents, spearheading various movements for a social and political environment, demonstrated with convincing sincerity a revolutionary zeal for change; change with consent; hitherto unexplored in national and international politics. Hence, Gandhi was totally against the usual violent methods associated with revolutions. He offered a package of alternatives to humanity- insistence on non-violence to violence, persuasion and reconciliation to end hostilities & trusteeship

to end economic injustices. The improvement of the lot of the depressed sections by abolishing factors that perpetrate social inequities, ending man's tyranny over nature by respecting nature as the protector of human race & by limiting one's needs and developing equal respect for all religions.

Gandhi's Blue Print for a Holistic Vision

Gandhi convincingly demonstrated through Ashram experiments the use of alternative sources of energy, & appropriate technology etc. In short, an ardent practitioner of truth that he was, Gandhi showed the humanity that there are workable alternatives which will be creative and sustainable. However, Gandhi on several occasion said that he was not trying to teach anything new. According to him truth and non-violence are as old as hills. Mahatma Gandhi, as early as in 1908, in his landmark work- Hind Swaraj pointed out that unprincipled growth of the society will land humanity on the brink of disaster. The evil that we have to fight today is -within us and that we are ignorant of it - is the basic problem. This can be possible only if we adopt a holistic vision of life and ensure equality and justice, which presupposes the simple truth that each individual is unique and we should respect his individuality and let him maintain his uniqueness and- what applies to an individual should be applied to a nation or to others at the global level.

Contemporary World Scenario & COVID- 19 Pandemic

Howsoever, these are extra-ordinary times. It is in such times that the need of a leader like Gandhi is felt most acutely. Politics of revolts, revolution and violence have lost their utility in these times when the world is armed with nuclear weapons. State power is increasingly being used by authoritarian rulers who can go to any extent to engineer violence against those whom they want to subjugate.

The fast emerging global socio-political and scientific sequence of events is a convincing reminder of the speed with which the forces released by science and technology and aided by human greed has dismantled almost (at one stroke) all humanity hitherto believed invincible. The socio-economic and political set-up all over the world has undergone tremendous changes during the last two decades and a new culture has taken over.

He further wrote; "I must confess that I do not draw a sharp line or any distinction between economics and ethics. Economics that hurts the moral well being of an individual or a nation is immoral and therefore, sinful"2. This indicates that "sustainable development", the buzzword among the environmentalists these days, requires both biological and cultural diversity, which in turn is inescapably linked to justice and compassion, towards each other and to the nature.

Neglegence Towards Mother Earth :

The rise in the materialistic and consumerist culture has led to the insensitiveness & callous indifference shown to mother earth. There has been an over exploitation of nature, as if there is in-exhaustible wealth hidden beneath the surface. The result is -environmental pollution which has led to the risk of rise in earth's temperature. The warnings and spirited campaigns undertaken by the various environmentalist groups to stop many of the harmful steps taken by the governments of affluent countries often have resulted in receiving practically a little attention.

Negation of Humanity's Basic Rights :

Gandhi warned against a series of social and political turmoil, ecological devastations and other human miseries that might arise unless modern civilization takes care of nature and man tries to live – in harmony with nature and tries to reduce his needs. He cautioned in strong words that consumerist tendencies and callous indifference to values will not help humanity to progress towards peaceful co-existence. Hatred of any form or exploitations of any type are actually negation of humanity's basic right to survive.

Lack of Ethics in Politics :

It is not just unique to Indian politics of the day. It's indeed overtaking large chunks of humanity across the globe, including the United States and Europe, once known as cradles of democratic and liberal politics. The Economist, celebrating its 175th anniversary recently lamented: "People are retreating into group identities defined by race, religion, or sexuality. As a result, the common interest has fragmented. Identity politics is a valid response to discrimination, but, as identities multiply, the politics of each group collides with the politics of all the rest.... leaders on the Right, in particular, exploit the insecurity endangered by immigration as a way of whipping up support... The result is --polarisation. Sometimes that leads to paralysis, sometimes to the tyranny of the majority. At worst it leads to far-right authoritarians." The use of hate against the 'other' is increasingly becoming familiar across the world. Humanity seems to be losing its moral core to an engineered fear of the unknown.

Gandhi's Principles of 'Satya , Ahimsa & 'Satyagraha' for New Era of Inclusiveness :

His principles were for universal cause and not for the welfare of any particular section. Imagine -Gandhi soon after the bloody Partition, started a fast-unto-death in 1948 with two demands: -

Firstly- killing of Muslims must end in Delhi and they must be allowed to go back to their own houses & Secondly- Government of India must give Pakistan back its due of 55 crores.

Only Gandhi could have dared to do it. In those situations when hatred swept across India in the aftermath of the partition that led to one of the worst ethnic cleansings of modern times. And, while he succeeded in his mission but he paid for it with his own life as a Hindu fanatics felt that Gandhi had turned into a pro-Muslim. Imagine, the tallest Hindu leader of India dying for a Muslim cause. Only Gandhi could have done it because he stood for truth irrespective of any demand. Gandhi's 'Truth' was for universal cause and not for the welfare of any particular section of society.

Actually only Gandhi could have thought that agitations might also be peaceful despite the contradiction in its terms. He, himself, practised it and made others also to accept it and follow his footsteps to succeed. Gandhi would not even mind terminating his own agitation against British rule if it turned violent as he did following violence at the incidence in Chauri Chaura in 1922. Peaceful Gandhian resistance is the only means left to fight back against the rise of the far right. One needs to agitate for the truth and invoke the spirit of inclusiveness to usher into a new era of truth & non-voilence.

This is what distinguished Gandhi from other leaders and transformed him into a Mahatma. Humanity once again needs Gandhian principles of truth and non-violence . We are living in times when hatred is the new order. To understand him better this Bhajan says rightly–

'Vaishnav Jan to tene kahiye, je peer parayee jane re.....'
Meaning-"One who is a Vaishnav knows the pain of others"

It is why Gandhi is Mahatma & Gandhi is Bapu –the indispensible leader of all time .

The COVID-19 Pandemic & Gandhi

The COVID-19 pandemic in India is a part of the worldwide pandemic of coronavirus disease 2019 (COVID-19) caused by Severe Acute Respiratory Syndrome Corona virus2 (SARS-CoV-2). The whole world is facing today a new unprecedented crisis due to this pandemic. The Virus has ruined many economies around the world. Many have had to close its borders in an attempt to control the spread of the pandemic. Thousands have lost their lives, millions have now got this disease. Countless people have been locked in their houses in this lockdown. The CORONA Virus -2 originated from the city of Wuhan in China has now reached every corner of the world. And the world is supposed to be heading towards a NEW NORMAL –but how normal it will be is yet to be realized.

Brief Chronology

On 22 March, India observed a 14-hour voluntary public curfew at the instance of the Prime minister Narendra Modi. It was followed by mandatory lockdowns in COVID-19

hotspots and all major cities. Further, on 24 March, the Prime Minister ordered a nationwide lockdown for 21 days, affecting the entire 1.3 billion-person population of India. On 14 April, the PM Modi extended the nationwide lockdown till 3 May which was followed by two-week extensions starting 3 and 17 May with substantial relaxations. From 1 June, the government started "unlocking" the country (barring "containment zones") in three unlock phases.

The United Nations (UN) and the World Health Organization (WHO) have praised India's response to the pandemic as 'comprehensive and robust,' terming the lockdown restrictions as 'aggressive but vital' for containing the spread and building necessary healthcare infrastructure.

Again noe in 2021 the Second wave of COVID has shaken the world and India is the worst hit as it has devastated big cities in India like Delhi, Mumbai, Lucknow and Pune. Hospitals and crematoriums have run out of space and funerals are taking place in car parks. But the pandemic has now firmly gripped many small cities, towns and villages where the devastation is largely under-reported. According to Union Health Ministry's Official bulletin around 3.6 lakh new corona cases were reported across the country (10.05.2021) which is a minor decline in the fresh cases.

The Lancet didn't mince the words while saying that "the Modi government is responsible for the current catastrophe". (Financial Expressd : Online updated: - May10,2021) Faced with the present crisis, what would Gandhi do?

First, Gandhi believed in self experimentation. He would not have merely preached rather he would have acted and practised himself.

Second, he would have begun action locally and not chased the world to change it. He was known to be able to see the Earth -in a grain of sand.

Third, he would have begun with actions that may look initially very small and silly. Like picking a fistful of salt, for example, that eventually changed the whole history of India's struggle for freedom.

This thought experiment, as to what Gandhi would do & how relevant his philosophy would be – this could be described under a nine-point action programme:

1) **Truth has no fear -** We are gripped more by the virus of fear than by the virus of Corona, and this fear pandemic has paralysed the whole world. Gandhi would ask us to first shed this fear, as he asked the Indians to shed the fear of the Britishers. The fear, being unreal, would begin to melt away. And this will be the begining of the victory over the disease.
2) **Nursing for CORONA warriors -** That was his natural instinct, expressed on innumerable occasions, from the Boer War, World War I, and during the epidemics in India, to his

nursing of the sick in ashrams, including the leprosy patient, the late Parchure Shastri.

Millions of people sick with COVID-19 today need physical care, nursing, and medical care. Gandhi, without fear, would have personally nursed them. He would be fastidious about hygiene, cleaning, hand washing, and mask use. Since medical science does not have a single proven effective treatment for COVID-19 anyway, Gandhi' would have used so-called Nature Cure, letting the body recover with nature's healing power, would make sense in most of the cases today.

Many patients with other illnesses who also need medical care are being unattended because COVID-19 has crowded them out. The medical industry's supply of health care has proven inadequate. In such a time Gandhi's emphasis on healthy lifestyle, empowerment for self-care and care in the community- would make perfect sense.

3) **Dandi March for the attainment of truth :** His talisman to guide us to our duty—the most helpless human being that we ever saw—is amazing. It is quick and intuitive. It is specific to us. That one-person, the symbol of the whole humanity, is our duty. Who would be Gandhi's talisman today? The displaced urban labourers, hungry and humiliated, walking towards the villages they once left but dying on their way, would unquestionably be his talismen.

Gandhi knows enough about their misery from his final days spent among the millions of displaced victims of the partition of India. How we continue to generate similar tragedies! Shunning the limelight of Delhi, Gandhi would have rush to them. He would have arranged for food, shelter, and medicines, but most importantly, he would have helped to preserve their dignity and hope.

4. **Inclusiveness-** The world under one umbrella-This was the last but incomplete cause of Gandhi's life. He was deeply wounded by how Hindus and Muslims turned against each other with hatred and violence, leading to the partition of India. When severe acute respiratory syndrome Coronavirus 2(SARS-CoV-2) was knocking on India's doors, some leaders were busy stoking communal hatred. They then blamed one particular religious section for the spread of the infection.

This communal division would be the foremost cause for Gandhi. He would try to unite Hindu, Muslim, Christian, Untouchables, and Tribals by living with them in their colonies, serving the sick among them, and sending them as volunteers to serve in each other's areas, even if such efforts to unite them would have risked him again with - his second assassination.

5. **Swadharma & Physical Distancing for Neighbourhood -** My neighbourhood is my responsibility. Fear of the virus and the strict lockdown due to pandemic COVID 19

have forced people to shut their doors and shun contact with neighbours. Gandhi would not approve this. He would say, "I am responsible for my neighbours. That is my Swadharma, my duty—to love and to serve them—especially in this hour of need. How can there be a neighbourhood without contact, and a community without neighbourhood?" So its always better to help them out with maintaining physical distancing while dealing with their health issues at this extra ordinary time of pandemic crisis.

6. **Courage for Acceptance of Own Mistakes -** He would be very truthful, ready to accept his own mistakes. He had the courage to admit that he committed a Himalayan blunder in launching a national movement against the British in 1920, believing that India was ready to practice non-violence. India was not. It was entirely his error of judgement, he said. He owned it and withdrew the national movement—even if it meant the whole world turned away from him.

   Similarly, faced with the threat of the COVID-19 pandemic, the global and national leadership have committed several blunders and changed the goal post repeatedly, from no infection to containment, to increasing the doubling time, to the present—learning to live with COVD -19. Without knowledge about a new disease the errors of judgement are natural, but where is the honest admission of taking the failure of the chosen strategy? Today, it is missing. Gandhi would have done that too. And surprisingly that would have made people trust him even more.

7. **Prayer -** The final act he would have advised us is -Prayer. At the end of each day, after we have made our best efforts and completely exhausted our options and energy, sit quietly, reflect and submit oneself. Submit to whom? That is one's choice. Submit to God, to Life, to Nature, to Truth, to History. Submit and surrender. One should have done all one could. Now do not continue to carry the burden on your own back. That will make one a donkey. Just realise the tininess of one's efforts in this infinite cosmos. Now leave it to Him. They will be done.

8) **Vocal for Local –**Need of the Time In the past 12 years, from the recession of 2008 to the economic crisis of 2020, we have seen that a globalised economy is too fragile. It crumbles often in the face of local tremors like the real estate scam in the USA or the emergence of a new virus in Wuhan. Gandhi would remind us of the humaneness and stability of local production, local consumption, and local community of relationships. He called it Gram-Swaraj. Such change in economy would invariably be accompanied by decentralisation of powers- political & economic. Globalisation has produced authoritarian political leaders everywhere. For Gandhi true democracy

decentralization & responsibility should be better practiced from the grassroots. That's why the call for –"Vocal for local" by our PM Modi seems a way forward.

9. **Difference between Greed & Need -**There is enough on this Earth. "What about our needs?" Some modern consumers of the giant global production system would ask. Gandhi would explain that this unlimited desire to consume, the insatiable demand for titillation and sensory pleasures, is not a need but an artificial, unnatural habit implanted in the mind- its greed. How many of these are true needs? Gandhi would say that there is enough on this Earth for everybody's need, but not for greed. The ability to discriminate between need and greed, the ability to provide for everybody's need, but there should self-control and socio-economic design to minimise the greed —this is what Gandhi would lead us to.

If we would limit our greed, excessive production, unnecessary consumption, hedonistic travel, and mad transport, the smoke and dust would start clearing. Life would become peaceful. Skies and rivers would turn clean and blue what we have already seen in this lockdown. We would realize in this pandemic period that we can happily live without several excesses of the modern society.

Conclusion : Mahatma Gandhi needs no endorsement from any government because his principles of truth and non-violence in politics have inspired humanity across the globe. He not only inspired leaders in various countries like Nelson Mandela and Martin Luther King, but a large number of people from almost every walk of life. He remains one of the tallest figures of the 20th century to have left his imprint on human history, an imprint that mankind continues to follow even in the 21st century.

Hence, in a world increasingly enamored with technology and conspicuous consumption on the one hand and giving into violence on the other, it is high time that the humanity should rediscover the Mahatma in everyone. To quote Robert Hart in his famous essay -Gandhi and the Greens: Road to Survival he said "At the critical period in the history of the world, humanity's only ultimate hope for survival lies in the worldwide movement for grass root reconstruction on Gandhian lines." The beginning of his 150th birth anniversary of Mahatma Gandhi is an occasion to-not just remember him but its an opportunity to invoke Gandhian philosophy at the time of pandemic - COVID 19. Gandhian philosophy is one the of most relevant means left to fight back against the rise of any odd at this point of time so far. The whole world is reeling under uncontrolled storm of new pandemic called COVID 19. Now we need to agitate for the truth and invoke the spirit of inclusiveness.

References:

· -Financial Express, Online, Updated : May 10,2021 3: 06: 17 pm

Suma Varughese; Looking for Gandhi; Life Positive, Available at

· .N. Radhakrishnan; Gandhi in the Globalized Context; The Transnational Foundation for Peace and Future Research, Available at

· V.P.Varma; Political Philosophy of Mahatma Gandhi and Sarvodaya, 1994, BharatiBhawan, Patna, p.-109.

· Ibid. p.110.

· . Ibid.

· M.K.Gandhi; Harijan, 25 August 1940.

· Globalization; Wikipedia the Free Encyclopedia, Available at http://www.en.wikipedia.org/wiki/globalization

· Satish Kumar; Gandhi's Swadeshi- the Economics of Permanence. Available at http://www.squal.net/caravan/icc-en/krrs-en/ghandi-econen.htm

· Ibid.

· Ibid.11. Suma Varughese; op .cit.

· Satish Kumar; op. cit

"अनुग्रह बाबू वीर, कर्मठ और त्यागी पुरुष थे। ऐसा उदार हृदय वाला प्यार और स्नेह से भरा हुआ व्यक्तित्व मैंने दूसरा नहीं देखा। सादगी की तो वे सच्ची प्रतिमा ही थे। मुझे उनके जीवन से बड़ी प्रेरणाएँ मिलीं है।"

–: लाल बहादूर शास्त्री

Shakespeare was much ahead of his time

Dr. Hansa Gautam
Associate Professor
Deptt. of English
A.N. College, Patna

Francis Becon's Philosophical interest in Shakespeare's text makes us realize that the Playwright was perfectly aware of the 'Scientific revolution' of his time – a time when magic, religion and science were just beginning to separate.

Many People have marveled at the Bard's apparently detailed knowledge of a wide variety of subjects and science, particularly medical science is no exception. The science Shakespeare was describing is more than four hundred years old but it was completely up to date for the time he was writing. I would like to quote Samuel Taylor Coleridge's lines regarding Bard's scientific temperament and his status among the timeless genius like Sir Isaac Newton. Here goes the quote :

"I believe the souls of 500 Sir Isaac Newtons would go to the making up of a Shakespeare."

Science deals with two things man and matter. Science is a noble enterprise with discovery of the laws of nature being the primary goal. And these laws are discovered by experimental observation. Science also studies the basic forces that govern the properties of matter and the interaction of fundamental parties. In both these pursuits there is no room for blind belief. On the other hand human emotions values and behaviour are the favourite themes of poetry. It deals with those aspects of nature thar are outside the purview of science such as the beauty of rainbow, clouds, wind, moon, the stars shining in the night, golden daffodils swaying in the breeze, the sound of falling waters running streams and rolling waves and the numerous murmur of life on summer eves. Thus science and poetry each has its own separate role in the scheme of things and it is neither desirable nor even possible for one to encroach upon the other.

Shakespeare's famously sparse biography offers a few clues to his own views on the science. Young William Shakespeare may have witnessed the blazing Stella nova : the supernova spotted by Danish astronomer Tycho Brahe in 1572. Of late, thanks to the increased sophistication and specialisation on certain branches of science there is tendency on the part of sone scientists to undertake patronisingly speculative exercises regarding the evolution of language in general and that of Shakespeare in particular. But

there is evidence to show that more than four centuries ago Shakespeare had uttered scientific truths in some of his plays.

The famous astronomer Kepler who discovered the laws of planetary motion believed in astrology but Shakespeare in no ambiguous manner makes Cassius tells Brutus : "The fault, dear Brutus, is not in our stars / But in ourselves, that we are underlings." (Julius Caesar, Act I, Scene III, L. 140-141). In King Lear Shakespeare makes Edmund say "This is the excellent foppery of

the world, that, when we are sick in fortune, often the surfeit of our own behaviour, we make guilty of our disasters the sun, the moon, and the stars...." King Lear , Act 1, Scene 2. So here we have two people who lived around the same time - one the greatest dramatist of all time who condemned astrology and a famous astronomer who wrote treatise on astrology and held an official position as a professional astrologer.

A very important point I'm going to state related the blood circulation in human body. Harvey discovered the circulation of blood in human body. Harvey discovered the circulation of blood in 1625 at the age of 37 years. In Julius Caesar, believed to have been written in 1599 Brutus says to Portia : "You are my true and honorable wife/as dear to me as are the ruddy drops/that visits my sad heart." – Act 2 Sc. 1. Is this not truly incredible

Elsewhere Julius Caesar observes "Of all the wonders that I yet have heard, it seems to me most strange that men should fear; Seeing that death, a necessary end, will come when it will come." – Act II Sc 2. Modern biology supports this view that death is "necessary" for the survival of the species as a whole and is not just the inevitable end of the life of a single individual. Shakespeare knew this scientific fact intuitively.

Some Shakespeare scholars have conjectured that Shakespeare must have been a physician for he shows knowledge of medicine, symptoms of disease and was familiar with insanity in all its forms. For example Macbeth is full of passages reflecting the nightmare, hallucination and fears in a murderer's mind. Macbeth while pleading with the doctor to cure his wife's(Lady Macbeth's) mental sickness says : "Canst thou not minister to a mind diseased, pluck from the memory a rooted sorrow, raze out the written troubles of the brain,

and with some sweet oblivious antidote cleanse the stuffed bosom of that perilous stuff which weighs upon her heart."- Act 5, Scene – 3. The doctor replies "Therein the patient must minister to himself" this is pure psychoanalysis. Shakespeare had anticipated this form of treatment for guilt and acute anxiety more than three centuries before Sigmund Freud a Austrian Neurologist. In yet another played Cymbeline the following line – "By medicine life may be prolonged, yet death will seize the doctor too." – Act 5, Scene 5 – reveals Shakespeare's views about medical science and treatment itself ! In Richard III Bard is talking about physical deformity and relates it to inferiority complex. Richard III speaks about his own deformity – "I, that am curtail'd of this fair proportion, Cheated of feature by dissembling nature, Deformed, unfinished, sent before my time Into this breathing world, scarce half made up, And that so lamely and unfashionable That dogs bark at me as I halt by them." This way Richard III is revealing why he became wicked as a compensation for his own inferiority complex. This dialogue of Richard III is an indication of Shakespeare's having anticipated Adler's theories. Alfred Adler propounded his theory of individual Psychology in 1917. Adler believed that birth order has a significant and predictable impact on a child's personality. It is an indication of Shakespeare having anticipated Adler's theories.

Intime with the 450th (more than 450 years) anniversary of Shakespeare's birth this month (April) we can say or argue that the Bard was mindful of the developments happening in astronomy, biology, psychology during his day and infact used them as fodder in his plays. Some scholars have speculated that Shakespeare must have been a botanist because he named nearly all plants during his period. I need to write another paper on it to show in his plays related to his knowledge of plant lives. In 2018 I got an opportunity to visit his birthplace Stratford-upon-Avon Warwickshire England and saw many plants which have been given name by the Playwright. The names were other than the botanical name. I was enthralled and imbibed it. Some scholars have speculated that Shakespeare must have been a botanist because he named nearly all plants known during his period. Thus Shakespearean plays reveal his scientific temper and outlook.

Francis Becon's Philosophical interest in Shakespeare's text makes us realize that the Playwright was perfectly aware of the 'Scientific revolution' of his time – a time when magic, religion and science were just beginning to separate. Thus Shakespeare plays reveal his scientific temper and outlook. At last but not the least "we can say of Shakespeare, that never has a man turned so little knowledge to such great account" said T.S. Eliot.

Rainwater Harvesting

"Rainwater harvesting is a technology used for collecting rainwater from rooftops, land surfaces or rock catchments and storing it using simple engineered techniques for human use before it drains away as surface run-off".

Dr Anju K. Gupta
Associate Professor,
Deptt. of Chemistry.
A.N. College, Patna

Water is essential for life and rain is the most important source of water on our planet. The minimum basic requirement for healthy living depends upon the availability of drinking water and all known civilizations has flourished with water source as the base present in adequate quantities and with suitable qualities. Rainwater recharges all fresh water resources on the surface and also infiltrates into subsoil to form groundwater. Water is abundantly available on earth but the total supply of freshwater is less than the human demand. Also, rapid increase in population along with intensifying urbanization and industrialization further affects the availability of freshwater both quantitatively as well as qualitatively. If the quality of freshwater is poor, it cannot be used for potable purposes and if the quality is marginal it can be used only for irrigation purposes. In our country, the surface run-off and groundwater forms the main source of freshwater and while the quantitative availability of freshwater is almost constant, its demand for the various purposes such as drinking, industrial, agricultural, etc. is on the rise.

Rainwater harvesting is a technique used for collecting and storing of rainwater from rooftops, land surfaces or rock catchments. The water is generally stored in a rainwater tank or directed to recharge groundwater. Evidences indicate that Rainwater harvesting has been used and practiced through the world for more than 3000 years. It is a very good alternative for places where good quality fresh surface water or groundwater is lacking. Today, Rainwater harvesting has gained much on significance as rainwater is available for free and is relatively clean and with proper treatment it may be used as a potable water source.

Typically, a rainwater harvesting system generally consists of three basic elements:

(1) the catchment

(2) the collection system, and

(3) the utilization system

These are described below:

(1) Catchment : It refers to a simple prepared surface area such as roof of a house or a building from where the rainwater can be collected. Large volumes of rainwater can be collected from roofs as catchment and the amount and quality of rainwater collected depends upon the intensity of rain, the surface area of roof and the type of roofing material. If the surface is impervious and smooth, the runoff occurs immediately and if it is pervious, the runoff occurs only after the surface gets saturated. If the intensity of rainfall is more and occurs for longer duration, more water will be available for harvesting. Roofs should be constructed of chemically inert material and must be strictly free of any dangerous materials like chemicals/fertilizers/ pesticides.

(2) Collection System: It refers to the arrangement made for collecting and storing the rainfall with minimal quantitative loss. A collection system is required to transfer the rainwater collected on catchment surfaces (e.g. roof tops) to the storage system. For this, the catchment is connected to one or more down-pipes that transport the rainwater through a filter system to the storage tanks. The connection pipes used should be made of suitable materials such as polyethylene, polypropylene, poly vinyl chloride, stainless steel or other inert substances. The installation of collection system is done in such a way that the runoff is collected and stored by gravity. Arrangements should be done in the collection system such that when it starts to rain, any dirt or debris from the catchment surfaces may get diverted to prevent entry of any debris into the tank. If the collection of rainwater is done for drinking purposes then precautions are required to prevent the storage tanks from any contaminants from birds, animals or insects. It is proper to use close containers to prevent any contamination and to keep out sunlight to prevent the growth of algae inside the tank. The storage tank should be periodically checked and cleaned. Chlorine solution should be used for cleaning followed by thorough rinsing.

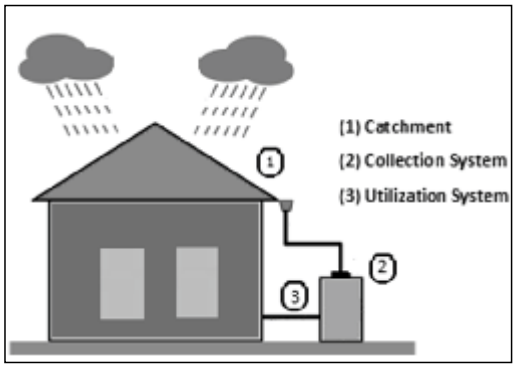

(3) Utilization system : Once the rainwater is collected and stored with the help of a collection system, arrangements can be made to make use of this collected water for gainful purposes. Depending upon the objectivity of rainwater harvesting, utilization system has to be designed with the help of pipes, hose, and a channel or drip irrigation system. An electric pump may be included into the distribution system where gravity flow is not possible.

If the purpose of collected rainwater is irrigation of a landscape, then the collection system should be designed such that it itself can work as a distribution system as well such that the rainwater can be diverted towards this area. Rainwater harvesting systems can also be designed with an objective to control flood and for this a runoff distribution network has to be worked out which has elaborate open channels, gates and diverters so that water can be diverted from one area to another.

Designing a Rainwater Harvesting System

The design of a Rainwater harvesting system depends on the estimated quantity of water that has to be harvested and the quantity depends on the area of catchment and the annual average rainfall of the region. It is important to recognize that rainfall is not constant throughout the year and therefore planning the storage system with an adequate capacity is required for the constant use of rainwater even during dry months. If the rainfall statistics of the area for the past 8-10 years can be gathered, it will be helpful for the better designing of the rainwater harvesting system. For the most reliable and specific rainfall data of the given area, meteorological department, and hydrological research centres or public works departments may be approached. Also, the cost and the objectivity of utilization of harvested rainwater have to be clearly identified at the stage of designing a Rainwater harvesting system so that larger water saving and its distribution may be achieved at lower costs.

Benefits of Rainwater Harvesting

(i) It uses simple and adjustable technologies which are easy to maintain.

(ii) Construction, operation and maintenance of system are not labour intensive.

(iii) Installation cost of the system is low and thereupon expenses get reduced especially with rising water costs.

(iv) Rainwater is relatively clean and therefore it caters for free source of water.

(v) Rainwater is captured directly and therefore reliance on water from dams/reservoirs is significantly reduced and provides a source of water at the point where it is needed.

(vi) Provides safe water for human consumption after proper treatment.

(vii) Groundwater level is highly recharged during rainfall.

(viii) It extends soil moisture levels for development of vegetation.

(ix) Capturing rainwater reduces the flow of storm water and therefore overloading of storm water in the neighbourhood gets considerably reduced.

“Sustainable development is a goal towards which all human societies need to be moving.”

Dr. ANIL KUMAR SINGH
Associate Professor
Deptt. of Chemistry
A.N.College , Patna

ग्लोबल वार्मिंग की पुकार, मानव करे हाहाकार
शांत हरियाली का हो ऐसा असर, ग्लोबल वार्मिंग हो जाए बेअसर।।
गर्म धरा जब होगी, सृष्टि अस्तित्व खोएगी
वृक्षारोपण कर करें काम कल्याण, इसी से होगा विश्वकल्याण।।
ग्लोबल वार्मिंग को करें कम, तो बचेगी पृथ्वी और बचेंगे हम
प्रगति विकास के सपने अधूरे, पर्यावरण के रहने के बिना नहीं होंगे पूरे।

Sustainable development is development that meets the needs of the present without compromising the ability of future generations to meet their own needs.”

The concept of sustainable development was popularized in 1987 by the World Commission on Environment and Development. Sustainable development is not just about the environment, the focus is much broader than that. It's all about meeting the diverse needs of people in different communities, social cohesion, creating equal opportunity to ensure a strong and healthy society. It also focusses on finding better ways of doing things without affecting the quality of our life. There are 3 components of sustainable development, economic growth, environmental stewardship and social inclusion.

Sustainable development means we want companies to expand, people to have the best jobs, everyone to afford nutritious food wherever they live, quality and affordable education for everyone, freedom of speech without violence and our economies to grow exponentially and develop innovative technologies, and most importantly achieve all this while keeping the environment safe.

The goals of sustainable development are three-fold as stated below:

1. To minimize the depletion of natural resources when creating new developments.
2. To create development that can be maintained and sustained without causing further harm to the environment.
3. To provide methods for retrofitting existing developments to make them into environmentally friendly facilities and projects.

Human civilizations have been around for a paltry 12,000 years barely a few seconds on

the geological clock. In that short amount of time, we have managed to create quite a ruckus, etching our dominance over nature with our villages, towns, cities and megacities. The rapid increase of human population has left us battling with other species for limited resources, and the unmitigated burning of fossil fuels has now created a blanket of carbon dioxide around the world, which is slowly but surely increasing the average global temperature.

The increasing number of humans on Earth is the main reason behind destruction of its resources at a rate that cannot be sustained. Therefore, the population management has a major role to play before the concepts of sustainable development can truly be realized. And in a country like India with the second largest population of the world having millions under the poverty line, sustainable development takes a back seat when the question of meeting one's daily needs arises.

Technological developments may solve some immediate problems but it results in some even greater ones, for instance, there is a huge global climate change happening around the world. Therefore, the environment is in peril and immediate actions must be taken by humans. Sustainable development provides an answer for this growing concern. Sustainable development involves satisfying the needs of the present populations without endangering the capacity of future population to satisfy its own needs. It is about improving the well-being of everyone wherever they are and achieving this milestone collectively.

If we want to undo the mess that we have made on this Earth, then we need to follow the ideas of sustainable development. Sustainable development promotes the thinking that social environment and economic progress all are attainable within the limits of our Earth's natural resources. The world is a system that connects space and a system that connects time. The air pollution from North America affects air quality in Asia, and the pesticides sprayed in Argentina could harm fish stocks off the coast of Australia.

Sustainability focuses on the achievement of actions that might help both the environment and the people. Sustainable development towards all human societies requires a change within the context of growth, to make it less material and energy intensive and more equitable in its impacts hence we will conclude that sustainable development may be a goal towards which all human societies have to move to in order to attain a far better life.

If we want to see our future generations to progress, then we must remember the words of Mr. Lester R Brown who said, "We have not inherited this earth from our forefathers; we have borrowed it from our children."

Higher Education in India :

An Enquiry from Political Economy Perspective

During the British rule in India, education was deliberately kept away from development agenda. The universities established at that time were basically affiliating, examining and regulating bodies. Universities were not given autonomy due to fear of dissent and that has remained as the university system has developed over the years.

Dr. Binod Kr. Jha
Deptt. of Pol. Science
A.N. College, Patna

During the British rule in India, education was deliberately kept away from development agenda. The universities established at that time were basically affiliating, examining and regulating bodies. Universities were not given autonomy due to fear of dissent and that has remained as the university system has developed over the years. Subsequently, the structure of the educational system in the post-colonial India, were inadequate to build potential human resources required for the self-reliant socio-economic development. In an attempt to remove the infirmities of these inherited structure, various commissions and committees were formed, from time to time but the growth in terms of qualitative improvement is yet to be spotted in the country.

In view of the remarkable expansion of higher education in India, it is extraordinary how little we have progressed in basic education. Amartya Sen, while delivering Lal Bahadur Shastri Memorial lectures, in 1970 remarked 'the contrast between our attention to higher education and neglect of elementary teaching had seemed intolerably large....he further argued that there were deep seated class biases in the pressures that have determined Indian educational priorities, and that the inequalities in education are, in fact a reflection of inequalities of social and economic powers of different groups in India.[*Derez J. & Sen A.: 1999, p-14*]

In fact, the main issues in higher education cannot be examined in isolation from larger social, economic and political changes that have been taking place in India, during the last few decades, which in turn are related to the dynamics of globalization to a large extent. After the decline of socialist and welfare-state models, neo-liberal regime has become hegemonic. Changes in financial arrangements have forced universities to reconsider their social missions and academic priorities .Concerns about equity, accessibility, autonomy or the contribution of higher education to social transformation, have been overshadowed by concerns about expenditure and rate of returns. The notion that higher education is primarily a citizen's right and a social investment is being seriously challenged by a neo-liberal agenda that places extreme faith in the market.

Policy and Privatization:

Appropriate policy frameworks for higher education are difficult to design for several reasons. This was further accentuated by the somewhat contradictory claims by World Bank's reports on social rate of return.[*Higher Education: The Lessons of Experience, 1994,p-3 and,Priorities and Strategies for Education: A World Bank Review, 1995,p-1*]. In fact,allocative decisions in India have, by and large, not been governed by any serious debate over this question. They are rather determined, by political economy considerations. The Eleventh Plan draft, for instance, envisages doubling public investment in higher education. But much of this has been driven by the need to defuse the political backlash caused by India's affirmative action policies, rather than by a rigorous examination of allocative priorities.

The centralized regulation of Higher Education (H.E) was introduced by the National Policy On Education in 1986.During the earlier days, H.E came under the ambit of state governments, which issued ,licenses to local dominant power holders to establish private colleges, leading to privatization via patronage at the local level. In an interesting study of the nexus of caste, education and politics, Rekha Kaul argued that ownership of technical colleges symbolized power and prestige of political leaders, and they were also instrumental in raising money for election. [*Kaul R.: 1993*]Gould quoted JP Naik as having said 'the congress has abolished the zamindari in land and has created a zamindari in education.[*Gould H.: 1972*]

A comparative analysis of India's H.E policy during the last few decades offers an explanation for the co-existence of privatization with centralized regulation.It leads to an understanding of how the Indian state orchestrated economic reforms via a clear re-arrangement of patronage networks and creation of new sources of patronage to replace existing ones. The persistence of rent- seeking in a liberalizing states has resulted from the state's attempt to placate powerful constituencies faced with adequate incentives to organize against reforms.[*Krishnan S.: 2014, p-64*]

In 2004, the Central Advisory Board Of Education (CABE), Report on the financing of higher and technical education (Govt. of India, 2004) reiterated the role of higher education in furthering socio- economic development and concerns of equity. In doing so, the report declared H.E in India to be in a 'deep financial crisis', which has led to the accentuation of financial hardship of institutions of higher education.The Report clearly documented the declining public expenditure on higher education in the aftermath of economic reforms.

The declining public expenditure in higher education also gave impetus to the rapidly expanding private sector in technical education .In addition, this trend reflected the Indian government's conscious resolve to encourage private entrepreneurship in order to promote the universalization and vocationalization of education. However it was economic liberalization and influx of IT that must be regarded as one of the critical point of reference for the new trajectories in India's tertiary education sector.

The system of grants-in-aid to educational institutions has remained the same as introduced

by the British government in 1980. Rudolph and Rudolph argued that these grants –in-aid are technically conditioned upon the maintenance of certain academic and administrative standard, but in reality an educational entrepreneur who enjoys political favor has little difficulty in establishing his institutions qualifications.[*Rudolph L.I. & Rudolph S.H.: 1972*]This system of grants-in–aid also ensures the state's dominant presence in affairs of institutions. The state dominant presence in the matter of admission and curriculum, was a direct consequence of a vested public interest in the running of private institutions, which survived within the framework of independent Indian state.

Unlike in countries where the public and private sectors had separate origins,in India, private sector did not develop in isolation from government initiatives. Consequently the post-independent higher education system always remained embedded in the political configurations of dominant societal interests.[*Rudolph L.I. & Rudolph S.H.: 1972*]

In the post-liberalization phase, the licenses to establish private colleges did not serve the purpose of mobilizing voters for elections. Instead, patronage in the higher education sector served the purpose of compensating and appeasing powerful constituencies which might thwart the passage of liberalization.[*Krishnan S.: 2014, p-67*]Growing fiscal deficits in this era meant a huge cutbacks in higher education sector. While this created an environment for influx of private providers, but this privatization took place under a stringent regulatory regime. It did not arise out of a policy geared towards a comprehensive programme of reform; rather, it came about as a result of discretionary actions by the state aimed at accommodating elite interests in the post- reform political system.[*Krishnan S.: 2014, p-67*]

The degree to which states have allowed the establishment of private higher education institutions varies considerably. The number is greatest in the southern states and Maharashtra,and least in states like Bihar and West Bengal. Kapur and Mehta opined that there were three key reasons for the expansive stance of political parties of all hues: the state's fiscal limitations; partial diffusion of the reservation conundrum by expanding supply; and, the search for new sources of patronage.[*Kapur D. & Mehta P. B.: 2007, p-25*]

For Indians, higher education has been, in Stanley Wolpert's evocative words, "the swiftest elevators to the pinnacles of modern Indian power and opportunity." This realization, coupled with the severe limitations of publicly-funded higher education institutions and the greater purchasing power of the middle class, means that Indians are pre- pared to pay rather than be denied. The exit of students to private suppliers of higher education is a phenomenon not limited to India's borders. While the numbers are lower, the overseas purchase of higher education has much greater financial implications.

Even more important than the financial costs are the implications for public education when elites leave. Indeed, the dilemma is a more basic one—the consumption of public services by elites has adverse distributional effects. But when elites exit, so does their voice. As Kapur and Mehta argue, the strength and resilience of institutions of higher education stem from the

participations of the nation's elite. Since higher education is one of the most important factors contributing to the growth of middle class-which in turn is both a cause and symptom of capitalist development.[*Kapur D. & Mehta P. B.: 2004, pp-11-12*]Thus their stake in the system must be the driving force of any higher education policy. This reality is lost to Indian policy elites, especially in the HRD Ministry which is strongly opposed to the General Agreement on Trade in Services (GATS) (although the Ministry of Commerce has been an advocate). The Indian policy is expressed by the HRD Ministry:

"The revised offer made by India at the GATS was to partially open up the Higher Education Sector under the condition that Higher Education Institutions can only charge fee as fixed by an appropriate authority and that such fees do not amount to charging capitation fee or lead to profiteering. The provision of the HigherEducation services would also be subject to regulations already in place or to be prescribed by an appropriate regulatory authority (MHRD, 2007)".

It was hardlya welcoming policy to attract the world's best universities.

Status of Higher Education today

The three key variables that help to understand the current position of India's higher education are the structure of inequality in India, the principal cleavages in Indian politics, and the nature of the Indian state. While India is not exceptional by conventional measures of income inequality, it is an outlier when measured by educational inequality. Such extreme inequalities inevitably result in populist redistributive backlash. However, the specific redistributive mechanisms are conditioned by the principal cleavages in Indian politics and the nature of the Indian state. The growth of identity politics has sharply enhanced political mobilization around two key cleavages in Indian society: caste and religion. Consequently, redistributive measures follow these two cleavages rather than other possibilities such as income and class, region (urban-rural), or gender. Moreover, given the fiscal constraints of the Indian state and the shifting locus of rents, since the resources available for redistribution are very limited, redistribution focuses on much more "visible" forms. This explains why India's poverty alleviation programs focus on "visible" club goods such as employment programs rather than less visible public goods such as health and education.[*Kapur D. & Mehta P. B.: 2007, pp-26-27*]And this is also why in recent years Indian politicians have obsessed over reservations in elite institutions in higher education rather than improve the quality of primary and secondary schooling, and the thousands of colleges of abysmal quality.

The social re-engineering that began in Madras province gradually spread to the rest of the country over the next half century. The confluence of identity and redistributive politics meant that higher education—the erstwhile preserve of India's upper castes—would inevitably become the battle ground of politics, especially as the "silent revolution" empowering lower castes gathered momentum. Indeed, the mismatch between new social groups holding political power and erstwhile dominant social groups entrenched in universities led the former to deliberately undermine state universities (exemplified in Bihar in the 1990s), since in doing so

they were also under-cutting the social power of old upper caste elites.[*Kapur D. & Mehta P. B.: 2007, p-27*]

The other cleavage of Indian politics—religion—is also manifest in higher education policies. The Constitution of India (Articles 29 and 30) provides special protection to linguistic and religious minorities in the country, allowing them to preserve their culture and traditions through minority institutions with few government controls. However, when government controls are circumscribed for "minority" institutions but mount for all other private higher education institutions, the incentives for each group to classify itself as a minority are obvious.

Meanwhile, those minorities—Muslims—for whom the original protection was put into place get little more than symbols. When the Sachar Committee on the status of India's Muslims showed that the socio- economic status of Muslims was relatively lowest in the states ostensibly most committed to secularism—the Samajwadi Party (SP)-governed UP, and the CPM-governed West Bengal—the states rushed to announce the creation of special universities for Muslims.[*Kapur D. & Mehta P. B.: 2007, p-27-28*]As per *Sachar* committee report the need was to first boost up their *madarsa* and secondary leveleducation, but electoral politics has compelled them to open new universities.

With the university having been accorded minority status, any irregularity in its functioning could be probed by the UGC only after being cleared by a three-fourths majority in the Assembly. The analytical point is that when entry barriers arising from regulatory control vary across communities, the consequences are worrying both for politics and for education.

Nonetheless,the choice of instruments used by the Indian state to advance the cause of "backward classes" remain puzzling. The share of currently enrolled persons in higher education course in the relevant age cohort of a social group provides a good measure of its current status. But this may be misleading if one does not consider eligibility for participation in higher education. To be eligible to enroll in higher education, one has to complete the school education.

Thus, instead of only focusing on the entire population in the relevant age group, measures of participation should also consider the segment that has crossed the threshold of higher education and is thus eligible to go to college. It may appear that equity goals may be better pursued in expanding the size and quality of the base on a prima facie basis. The grossenrollment ratio in Class IX–X is 51.65 percentbut drops sharply to 27.8 percent at Classes XI–XII. Even a modest reduction in the dropout ratio could significantly increase the potential college going pool among the backward classes. But there has been little effort directed to this end.

The university system in India is the collateral damage of Indian politics. The vast majority of government colleges in small towns offer dismal educational outcomes, according to a survey by (WEST), only 34% of graduates have employability skills, another survey states that only 19% of engineering, and 5% 0f non-engineering graduates are employable. Our outdated curricula glorify and promote exam-and-marks oriented approach to teaching. The NIPFP has identified

private education as one of the source of black money.

It is a well-knownsecret that only politically influential and monetarily strong 'academics' become vice-chancellors in many state universities.Many running government higher education institutions have been razed to the ground is not the result of limited resources but a matter of deliberate strategy. A cynical view that has been doing the rounds for some time in university circle is that the so called 'reforms' are a part of government plan to destroy the state funded universities, so that private universities can flourish. One may not buy this argument, but there is just too much evidence to show that nobody in the higher echelons of power is thinking seriously about the quality of higher education. Otherwise, it should have been obvious that what is important is not the canteen but the food that it serves. As a result of above discussed factors, we have three inter-related vicious circle.[*Kapur D. & Mehta P. B.: 2004, pp-12-16*] First such vicious circle is the diminishing signaling effect, most of 300-odd universities (especially state universities) to which the bulk of the student population is affiliated have stopped performing the essential functions of a university. Not a single Indian institute of higher learning figures in the list of top 200 universities,notwithstanding the obvious limitations of the ranking exercise, these dismal rankings are quite often taken as a measure of the crisis of higher education in India. Millions of students with a weak learning base make their way into the colleges and encounter a higher education system that has been wrecked by the political interference over the decades.

Meanwhile, the demand for education has led to the mushrooming of private higher educational institutions across the country, many of which operate under political patronage and take advantage of a lax or corrupt regulatory environment to run courses and offer 'degrees' which are of little use in the market.The primary purpose of a university is to provide a minimal signaling effect to the job market. Most observers agree that Indian universities,because of the successive government'spolicy of fund–cut, destruction of autonomy, creativity and diversity, with a few exceptions, do not perform this signaling effect.

A degree from any of these universities could mean anything in terms of quality. A tacit acknowledgement of the breakdown of signaling effects of degrees comes from the principal regulatory authority of higher education, the UGC. For instance, in order to be eligible to teach at a public university, candidates with even a PhD have to take another qualifying test; this test was introduced to remedy the fact that the candidate's PhD in and of itself did not indicate anything about his or her abilities, and which was even approved by judiciary.

Once the signaling effect of a university system breaks down, three consequences follow.

First, the curriculum and pedagogy of the university become less compelling. Second, greater attention and resources are devoted to those arenas which now de facto perform signaling functions, such as entrance exams and competitive tests. This leads to the creationof an almost parallel system of education. Since the formal institutions are detached from these signaling mechanisms,informal institutions such as coaching classes dominate the intellectual space.

Third, there is an attempt to secede from the system. But of equal importance is the fact that almost all of these institutions incur significant private expenditures, which are largely borne by the middle class. Indeed, if the middle class was influential, one would expect that there would be great pressure and momentum to restore the credibility and signaling effects of higher education. It is interesting to note that there is a lack of attention to education in public discussions and political debate in India.

A second vicious circle stems from an ideological entrapment, which is itself a result of the nature of Indian state, between half-baked socialism and half-baked capitalism, with the benefits of neither. In some ways this is best exemplified by the fact that officially there is an enormous reluctance to see education as an industry or business. In effect, ideological commitment to some principle of equality has precluded the state from mobilizing the vast reservoirs of private money available for higher education. In a context where the sum total of private expenditures considerably exceeds expenditures by the state, this policyneeds to be rethought.

Second, there has been a proliferation of private institutions, largely in the area of professional education. But again, the pattern of this expansion suggests that the middle class had very little influence on this policy. The rapid expansion of "capitation fees colleges" came about not as a result of great middle class pressure but rather from the entrepreneurial activities of politicians. The capitation fee system was an arena where the new politics of reforms was played out. An arena defined by the nexus of caste, education and politics, pre- existing patronage networks made it ideal ground for unfolding of this new politics. In fact, this growth of private colleges, is not simply a rational response to expanding demand but is an opportunity to collect rents, while no doubt it helps to relieve the pressure on public institutions to some extent.

There is an inherent tension in the ideology of the Indian state toward higher education. On the one hand, education was going to be a means toward creating social mobility and equality of opportunity. But to create the conditions under which the education system can effectively serve these purposes requires a vastmobilization and commitment of resources. Since thestate has been patently unable to do that, it interpreted equality of opportunity in almost a formalistic, even formulaic manner, where any difference or distinction was regarded as inimical to these goals.

The state used the education system to express these commitments by insisting that there be no differentiation of fees, or even substantial differentiation of curriculum across 350-odd universities. Indeed, the crisis of standards that afflicts Indian universities is in part sustained by an ideological commitment to the myth that education should not be made into an arena of difference. This aspiration is in principle flawed because higher education is, among other things, about creating distinction and excellence. It is true that the mandate of the state ought to be to enhance the median level of skills among citizens, but it is hard to imagine a robust system of higher education that does not perform the function of distinguishing the skills and qualities of its students. The suspicion of excellence in Indian higher education was a result of this

commitment, and was in part instrumental for destroying its signaling functions. Normally, the middle class is supposed to have a great commitment to a system where degrees provide signaling functions. The emphasis on leveling rather than distinction is perhaps another indication of the weakness of middle class hold on education.

The third vicious circle follows from the previous two and might be called the circle of statism. One of the subtexts of the above argument is that higher education policy is being driven less by a clear ideological vision or class interest than by the state's own interest (or perhaps its own ideological whims). Indeed, the surprising constancy in education policy and expenditures over time reinforces the argument that this arena is not susceptible to an overtly demand-driven calculus. Much of what goes in the name of education policy is a product of the one overriding commitment of the education bureaucracy—namely state control in as many ways as possible. The direct interference of the state has implied that in most states, universities have become appendages of government offices.

Despite impressive reforms elsewhere, Indian higher education sector remains the most tightly controlled and least reformed sector. Deep ideological and vested interests have made reform in India's higher education sector all but impossible. In the post reform era, the emergence of Indian state meant that patronage now flowed from the political imperatives of ruling elites at the center. A clientilistic higher education system controlled by powerful groups required the state to ensure uninterrupted patronage flows to these groups during economic reforms. In the face of state's retreat from this sector, the politics of patronage performs the function of co-opting groups, which could thwart the move towards reform. The process neither serves a screening or signaling function for the vast bulk of students, nor prepares students to be productive and responsible citizens.

It has become evident that the government is eager to control the universities both at the central and state level, for this UGC has formulated many proposals in recent years. It must be noted here, that a common syllabus is neither desirable nor feasible as this will diminish creativity and lower standards in order to confirm to common standard. In-fact we need a university system that encourages diversity and decentralization, not one that centralizes authority or enforces uniformity.

The fate of our universities is too precious to be left to the whims of individual mandarins, ministers or vice-chancellors. It is time that an 'Education Commission' consisting of experienced and respected academics and educationists was set up to take stock of our universities and to seriously deliberate on what needs to be done to improve the quality of education they impart.

Women workers in Bihar :
Survival and Resilience during COVID Times (Case study of JEEViKA)

Jeevika Didis are the unsung heroes of rural Bihar and they are harbingers of change. They have scripted a beautiful social story of mass mobilisation, coping with stress and showing resilience during these testing times.

Dr. Ratna Amrit
Associate Professor
Deptt. of History
A.N.College, Patna

The Pandemic is both exposing and amplifying pre-existing inequalities between men and women. Its impact has not been gender neutral. While men are suffering higher mortality rate, women are specially affected by the economic and social fallout: as victims of domestic violence locked with their abusers, as unpaid care givers in families and communities, as people involved in child care, the condition of women has worsened. Jobs in the sectors were women predominate are hard hit. They would have to cut down their public working hours for work at home.

It is well known that women's employment recovers much more slowly than men's employment and this may erase the small progress that women had made in economic sector.

Amidst all these relevant thought I would like speak about an area which demonstrates the resilience, tenacity and will power of rural women during this Pandemic.

Having seen the two phases of COVID – very closely as a housewife of the person who is spearheading the fight against the Corona virus, as a teacher, as an administrator (Programme Coordinator NSS), I got an opportunity to understand the dynamics of women power in the rural areas of this State-the "Jeevika Didis". Its network consists of 10.43 Lac Self Help Groups.

JEEViKA (Bihar Rural Livelihoods Promotion Society) initiated numerous activities in wake of outbreak of the Pandemic. In the initial day, when COVID-19 outbreak was not being perceived as a big threat, but its accreditation as a global Pandemic, JEEViKA started in its venture for spreading awareness to the community through audio messages, leaflets, theme songs and videos. The awareness was regarding preventive measure of COVID, home based COVID treatment and post COVID care and recovery.

Training was also imparted to Jeevika Didis on home care during COVID, Preventing mother and child from COVID, Pathology of COVID-19 and Grief and bereavement during Covid-19 crisis. 21 JEEViKA Aaapda Shayak have been identified from amongst Jeevika Didis and are being oriented UNICEF and CORSTONE to support female community members visiting government hospitals for treatment.

The Self Help Groups (SHGs) of Jeevika Didis took up the task of production of mask as this is the first line of defence against COVID-19. Mask Production gave employment to them as well as financial support during a time when the economy is in severe crisis. These women have been able to ward off this crisis. Cumulative production of mask for phase-I and 2 is Rs. 10.17 Cr. Total business generated through them during the two phases has been Rs. 176.95 Cr.

Jeevika is working in banking sector through alternate banking channels and Business Correspondent agents known as "Bank Sakhis". The Bank Sakhis ensured that the cash flow in the rural areas remain steady as cash is the need of the hour. A total of 1650 Bank Sakhis were extending services and during the lockdown from April 2021 to May, 2021.

A very interesting and innovative service of the Jeevika Didis has been the creation of "Didi ki Rasoi" to ensure quality food to Quarantine and in-patients in government hospitals. Ten Didi ki Rasois operated by Didis of Jeevika are currently operational.

I would like to highlight one more aspect of the role of Jeevika Didis. We are aware that vaccination is going to be the key weapon in this fight against the Pandemic. The Jeevika Didis have played a vital role in spreading the awareness for vaccination in rural communities in Bihar. On International Women's Day, March 8, 2021 through a vaccination drive with the help of District Administration 4,81,140 women were immunised across 38 districts of Bihar in a single day.

Thus we can say that Jeevika Didis are the unsung heroes of rural Bihar and they are harbingers of change. They have scripted a beautiful social story of mass mobilisation, coping with stress and showing resilience during these testing times.

Effect of gender in Alexithymia and Internet Addiction among youth

An analytical study

Sujeet Kr. Dubey
Associate Professor,
Deptt. of Psychology
A.N. College, Patna

ABSTRACT

The present study was intended to find out the role of gender in the Alexithymia and internet addiction among the youths, specially the college students. Also, the purpose was to find out the association between Alexithymia and Internet addiction among the youth. For this, The Toronto Alexithymia Scale by Baghby, Parker and Taylor as well as the Internet addiction test by Young were used in the study. The subjects were 120 students from different colleges of Patna district. Results have revealed that gender has prominent effect on both Alexithymia and Internet addiction. Also, these two dependent measures were positively correlated.

INTRODUCTION : Alexithymia is the inability to identify and describe one's emotional experience and related to poor interpersonal functioning **(Aaron, Benson, 2015)**. It is characterized by impaired capacity to consciously experience emotions. Around 10% of the general population thought be alexithymic. The term alexithymia was coined by **Sifneos** and introduced in the early 1970s to denote a cluster of features including difficulty identifying and describing subjective feelings, a restricted fantasy life, and preoccupation with trivial aspects of external events' characteristics.

Alexithymia is not classified as a mental disorder in DSM-5. Nevertheless, it is accepted that alexithymia has a negative impact on a variety of somatic and mental health treatments. Alexithymic persons are exposed to danger of psychosomatic disorders and mood disorders because these persons are not able to regulate their feelings. Alexithymia reduces the quality of life among people. The results of different studies indicate that alexithymia can be observed among patients with psychiatric and clinical disorders.

Alexithymia is associated with many psychological and physical disorders, such asanxiety **(Karukivi, 2015),** depression **(Li, 2015),** somatization **(Brandt, Pintzinger& Tran, 2015),** somatic complaints **(Tominaga, 2013),** eating disorders **(Jenkinson, Taylor & Laws, 2018),** myocardial infarction **(Silva, 2016),** carotidatherosclerosis **(Grabe, 2010),** and higher mortality rates **(Tolmunen, 2010).**

Internet addiction means excessive and uncontrollable use of internet that leads to various detrimental results, including bad academic and professional performance, relationship problems, insomnia **(Young, 2004).** This type of addiction is one of the problems that mainly affect young people in the community and may create problems throughout the education of pupils and students **(Wallace,2014).**

Purpose of the study- The main objectives of the present research were as follows:

- To examine the role of gender in the development of Alexithymia and Internet addiction.
- To explore the difference between male and female students on the measures of Alexithymia.
- To identify the level of addiction for internet among the college students.
- To illustrate the difference of level of internet addiction between male and female students.
- To find the association between Alexithymia and the Internet addiction among the college students.

Hypothesis- Following hypotheses were framed for test in this research:

1. "There would be difference between male and female subjects on the scale of Alexithymia."

2. "Male and female student will have different levels of internet addiction."

3. "Alexithymia and Internet Addiction among the college students will be positively correlated."

METHODOLOGY

(A) Sample : The sample was 120 college students in the age group of 18 to 25 years. They belong to the different colleges of Patna district. Among them, 60 were male students and 60 were female students.

(B) Tools : There were two tools used in the present study. The details of both are as follows-

Toronto Alexithymia Scale (TAS)-This scale has been developed by Michael Baghby, James Parker and Graeme Taylor. The TAS-20 has 20 items that respondents should answer using a 6-point Likert scale ranging from None (1) to Always(6). It measures three dimensions of the alexithymia construct like **Difficulty Identifying Feelings (DIF), Difficulty Describing Feelings (DDF),** and **Externally Oriented Thinking (EOT).**The range of scores on this scale is from 20 to 120.

Internet Addiction Test-This is developed by Kimberly. S. Young. It comprises 20 items rated in a five point Likert scale (from 1- not at all, to 5- always). The range of scores on this scale is from 20 to 100, with higher scores indicating more severe dependence on the Internet, so that a score of less than 20 indicates lack of dependence, the scores 20-49 indicate a normal user, the scores 50-79 indicate mild addiction (users at risk), and the scores 80-100 indicate severe.

(C) Design : The between group design has been used in the present study. Here, the gender of the students has been studied as independent variable while Alexithymia and the Internet addiction have been considered as the dependent variables.

(D) Personal Data Sheet : A personal data sheet was used to collect the information about the subjects' gender. This sheet has been attached along with the scales.

(E) Data Collection Procedure : To collect the data, a strong rapport was established with the subjects to get their free and frank views on the items of the both scales. Each subject was approached individually. The printed instructions on the two scales were read out to them. After that they were asked to respond on all the items of the both scales. If the subject had any problem in understanding any item, it was clarified to him/her.

(F) Data Analysis : The subject's obtained data on both scales has been subjected to statistical analysis with the help of Mean, SD, t-ratio and correlation.

RESULTS : Results of the present study has been presented in tabular forms with the help of Table A, Table B and Table C.

Table A

Showing mean scores of male and female college students on the Alexithymia scale

Groups	Mean	SD	t-ratio
Male (N=60)	42.15	8.46	16.04
Female (N=60)	60.28	7.53	P<.01

Table A presents the mean scores of male and female subjects on the dependent measure of Alexithymia. As can be seen from the table that the mean of male students is 42.15 and mean of female student is 60.28. The standard deviations are 8.46 and 7.53 respectively. The t-ratio between them is 16.04 which has been found significant at .01 level. This clarifies that both groups are different on the scale of Alexithymia. Here, mean of female students is higher than the mean of male students. This means that females are more prone to alexithymia as compared to male. This result confirms the first hypothesis of the study.

Table-B

Showing mean scores of male & female college students on the Internet addiction test

Groups	Mean	SD	t-ratio
Male (N=60)	64.01	6.57	12.22
Female (N=60)	83.19	10.23	P<.01

Table B shows the mean scores of male and female college students on the internet addiction test. From the table, we can see that, the mean of female subjects are higher than the mean of male subjects. It depicts that females are more addicted to internet in comparison with males. Earlier, we have found in the table A that females are more alexitymic and so that they are more addicted towards internet. In other words, we can say that those who have Alexithymia use to spend time on internet or the addiction of internet encourages alexithymia. Both probabilities can be true because alexithymic people are introverts, so they can express their emotions through indirect way on social media. This supports the second hypothesis of the study.

The study findings suggest that the internet addiction scores were higher among alexithymic individuals (females) than those who are not alexithymic (males). Recent research shows that there is a relationship between alexithymia and internet addiction **(Scimeca, Bruno, Cava, Pandolfo, Muscatello, Zoccali, 2014).**

Table-C

Showing correlation between Alexithymia and Internet Addiction among subjects

Dependent measures	N	r	P
Alexithymia	60	0.53	P<.05
Internet Addiction	60		

Table C illustrates the correlation between Alexithymia and Internet Addiction among subjects. It can be seen here that both dependent measures are positively correlated. Alexithymia increases internet addiction and people with internet addiction will be alexithymic. This confirms the third hypothesis of the study. In the studies of **Mahapatra, and Sharma,2018 and Craparo,2011,** same results have been found.

Major findings of the study-

1. There has been significant difference between male and female students on the Alexithymia scale.
2. Male and female students have found significantly different on the internet addiction test.
3. The Alexithymia & Internet addiction among the subjects are positively correlated.

CONCLUSION : Conclusively, we can say that gender has a strong effect on the development of Alexithymia and Internet addiction among the college students. Those who are alexithymic would have internet addiction and those who are internet addicted displays alexithymia. Also alexithymia and internet addiction both are positively correlated.

References:

- Aaron RV, Benson TL, Park S. Investigating the role of alexithymiaon the empathic deficits found in schizotypy and autismspectrum traits. Personality and Individual Differences.2015; 77:215–20.
- Brandt L, Pintzinger NM, Tran US. 2015. Abnormalities in automatic processing of illness-relatedstimuli in self-rated alexithymia. PLOS ONE 10(6):e0129905DOI 10.1371/journal.pone.0129905.
- Craparo G. Internet addiction, dissociation, and alexithymia. ProcediaSocBehav Sci. 2011;30:1051-56.
- Grabe HJ, Schwahn C, Barnow S, Spitzer C, John U, Freyberger HJ, Schminke U, Felix S,Völzke H. 2010. Alexithymia, hypertension, and subclinical atherosclerosis in the general population. Journal of Psychosomatic Research 68(2):139–147
- Jenkinson PM, Taylor L, Laws KR. 2018. Self-reported interoceptive deficits in eating disorders: ameta-analysis of studies using the eating disorder inventory. Journal of Psychosomatic Research110:38–45 DOI 10.1016/j.jpsychores.2018.04.005.
- Karukivi M, Tolvanen M, Karlsson H, Karlsson L. 2015. Alexithymia and postpartum anxietyand depression symptoms: a follow-up study in a pregnancy cohort. Journal of Psychosomatic Obstetrics & Gynecology 36(4):142–147 DOI 10.3109/0167482X.2015.1089228.
- Li S, Zhang B, Guo Y, Zhang J. 2015. The association between alexithymia as assessed by the 20-item Toronto Alexithymia Scale and depression: a meta-analysis. Psychiatry Research 227(1):1–9DOI 10.1016/j.psychres.2015.02.006.
- Mahapatra A, Sharma P. Association of Internet addiction and alexithymia-A scoping review. Addict Behav. 2018;81:175-82.
- Scimeca G, Bruno A, Cava L, Pandolfo G, Muscatello MR, Zoccali R. The relationship between alexithymia, anxiety,depression, and internet addiction severity in a sample of Italian high school students. The Scientific World Journal.2014;504376.
- Sifneos P. The prevalence of 'alexithymic' characteristics in psychosomatic patients. Psychother Psychosom 1973;22:255–62.
- Silva H, Freitas J, Moreira S, Santos A, Almeida V. 2016. Alexithymia and psychopathology inpatients with acute myocardial infarction. Acta Cardiologica 71(2):213–220.
- Tominaga T, Choi H, Nagoshi Y, Wada Y, Fukui K. 2013. Relationship between alexithymia and coping strategies in patients with somatoform disorder. Neuropsychiatric Disease and Treatment10:55–62.
- Tolmunen T, Lehto SM, Heliste M, Kurl S, Kauhanen J. 2010. Alexithymia is associated with increased cardiovascular mortality in middle-aged finnish men. Psychosomatic Medicine72(2):187–191
- Wallace P. Internet addiction disorder and youth: There are growing concerns [5]about compulsive online activity and that this could impede students' performance and social lives. EMBO Reports. 2014;15(1):12-16.
- Young KS. Internet addiction a new clinical phenomenon and its consequences. American behavioral scientist.2004;48(4):402-15.

खुदा ने बख्शी ईद की सौगात

डॉ॰ शबाना करीम
उपाचार्य, वनस्पति शास्त्र विभाग
ए.एन.कॉलेज, पटना

इम्यूनिटी जिसकी मजबूत होगी वही कोरोना से जंग जीत पाएगा। लेकिन ये इम्यूनिटी किसकी है मजबूत? कैसे पहले के लोग जीते थे सौ साल...? पहले के रहन–सहन, रस्म व रिवाज और आज के मॉडर्न रिवाजों का अंतर समझ में आने लगा...शायद।

आँसू भरी आँखें ... तड़पती निगाहें ... तड़पते एहसास... डरावने लम्हें ... भींगी पलकें... बस दुआ मांगती थी... अस्तग्फेरूल्लाह... अस्तग्फेरूल्लाह (ऐ खुदा हमारे गुनाहों को माफ कर दे, बख्श दे हम इंसानों को... आमीन्)

फोन का रिंग बजता धक् से रह जाते... अपनों की सांसें अटक रही थीं ... खुदा रहम कर ... सांसों की भीख मांग रहे थे हम सभी... कुछ भी तो ठीक नहीं था... अपने–प्यारों के लिए तड़पता इंसान। जाने कब? सबकुछ पहले... और पहले... और भी पहले जैसा हो सकेगा...

उनसे पूछो, जिसने खो दिया... कमी क्या भर पाएगी? नहीं ... उनके गम में दूर से ही शरीक हुए, पास न जा सके... कैसी मजबूरी... ये एहसास हुआ इंसान को, अकेले ही आया है और अकेले ही जाना है... ये दुनिया फानी है...

टूटती सांसों की तड़प ने जिन्दगी की कीमत का एहसास दिला दिया। हम इंसानों ने क्या किया ...? अपने ही खूबसूरत, हरी–भरी, शफाक पानी, नीले आसमां और दिलकश हवाओं वाली दुनियां को खुद ही बर्बाद कर, मुहताज हो गए ऑक्सीजन के लिए ...ऐ मालिक तेरी दी हुई खूबसूरत दुनिया को बदसूरत बना दिया। कैसे हुआ ये...? अब समझ पाए ...शायद।

इम्यूनिटी जिसकी मजबूत होगी वही कोरोना से जंग जीत जाएगा। लेकिन ये इम्यूनिटी किसकी है मजबूत? कैसे पहले के लोग जीते थे सौ साल...? पहले के रहन–सहन, रस्म व रिवाज और आज के मॉडर्न रिवाजों का अंतर समझ में आने लगा...शायद। यही नहीं, गुस्सा, ईर्ष्या, झगड़ा नहीं करना चाहिए। न्याय, ईज्जत सब धर्म ने सिखाया। पॉजीटीभीटी से बढ़ती है इम्यूनीटी, यह राज अब समझ में आया...शायद।

मंदिर–मस्जिद सुनसान पड़े हैं। मंदिर में न शोर घंटो–घड़ियाल की मस्जिदों में न नमाज, न आवाज अजां की...अब तो खौफ सा है...हँसू या न हँसू...

ऊपरवाले से...आस लगाए... आंखों में उम्मीदें बसाए... हाथ उठाए... एक–एक दिन, एक–एक रात, जाने अन्जाने गलतियों की माफी मांगते... अपने प्यारों की सेहत और जिन्दगी की दुआ मांगते रहे...। जाने कैसे वक्त कटता गया। अकेले क्या जंग लड़ेगा इंसान...? लेकिन अपनों की दुआएँ, आरजूएँ, विनती ही

जैसे दवा बन गई... और मानो कोरोना ने रिश्तों की सच्चाई का एहसास दिला दिया।

खुदा ने दुआ कबूल की और करिश्मा ही तो हुआ... अपने–प्यारे ठीक होकर घर वापस आ गए ... ये जंग ही तो था, कोरोना से। जीत की खुशी ... कल ईद है.... यही तो सौगात है ईद की, जो खुदा ने बख्शी है.... अनमोल है... अल्हमदोल्लिाह।

शायद कोरोना इसलिए आया ताकि हम अपनी गलतियां सुधारें और शुद्ध, साफ, खुशबास दुनिया बसाएँ।

कोरोना क्या खत्म हो जाएगा? पता नहीं... लेकिन हम सब को जिन्दगी में सुधार लाना होगा, आओ हम सब ठान लें–

अपने प्यारों की सांस न टूटने देंगे, ऑक्सीजन की कमी न होने देंगे।
हरे पेड़–पौधे लगाएंगें, हम रिश्ते बेहतरीन बनाएंगे।
हम इंसान हैं, इंसान का धर्म निभाऐंगें,
कोरोना क्या चीज़ है, हर जंग जीत जाएंगे।

◉

"समाज में हमेशा कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं जो भविष्यद्रष्टा होते हैं और समय से आगे की बात देखते और करते हैं। ऐसे व्यक्ति मानव-समाज की भावी प्रगति के लिए योजना बनाते हैं। स्व. बाबू साहब इन्हीं थेड़े से महान भविष्य निर्माताओं में थे। हमारे लिए दुर्भाग्य की बात यही है कि हम उनसे तब वंचित हो गये जब उनकी आवश्यकता सबसे अधिक थी।'

–डा. श्री कृष्ण सिंह

रामचरितमानस में शक्ति का समावेश

महाकवि तुलसीदास ने शक्ति के विधायक आयामों को जीवन और जगत् की सम्पूर्णता में अभिव्यक्त कर उपयोगितावादी दृष्टिकोण से नैतिक मानदण्डों के अनुरूप विचार किया है। शक्ति के विघटित आयामों को प्रस्तुत कर उससे होने वाले दुष्प्रभावों की ओर संकेत भी दिया है। रावण की सम्पूर्ण इहलीलात्मकता का विनाश इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।

डॉ॰ संजय कुमार सिंह
हिन्दी विभाग
ए.एन. कॉलेज, पटना

भारतीय वाङ्मय के अनुशीलन से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि ईश्वर की अपेक्षा ईश्वर की शक्ति का विशेष महत्त्व है। ईश्वर की इस शक्ति को स्त्री-रूपा कहा गया है। इसे मातृकाशक्ति से भी अभिहित किया जाता है। शक्ति की इसी शाश्वत परिकल्पना के पीछे भारतीय पारिवारिक जीवन में मातृशक्ति और मातृसत्ता का विशेष प्रचलन रहा है। 'रामचरितमानस' में कौशल्या आदि रानियों की पारिवारिक व्यवस्था के मध्य इस रूप को देखा जा सकता है। पुरुष और स्त्री जाति के परस्पर आकर्षण का मनोवैज्ञानिक आधार भी यही है। ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर सिन्धु घाटी की सभ्यता में मातृपूजा या देवीपूजा का प्रचलन लोकजीवन की शाश्वत परिकल्पना को उद्घाटित करता है। 'ऋग्वेद' के अदिति-सूक्त में मातृभाव, उषा-सूक्त में कुमारी-भाव, सूर्यादेवी-सूक्त में पत्नी-भाव तथा देवी-सूक्त और वाक्-सूक्तों में शुद्ध शक्तिवाद की व्याख्या है। इन सभी सूक्तों को पारिवारिक जीवन के मध्य सार-तत्त्व के रूप में 'रामचरितमानस' में व्यक्त किया गया है। वैदिक ऋषियों ने 'माता पृथिवी महियम' कहकर शक्ति के प्रति अपनी अभ्यर्थना निवेदित की है। सीता के साथ राम को संयोजित कर जगज्जननी के रूप में देखने का विधान तुलसी ने अकारण उपस्थित नहीं किया–

"सिया राममय सब जग जानी। करऊँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।"

पृथ्वी देवी और सीता का सम्बन्ध दिखाकर उन्हें विश्वजननी के रूप में उपास्य बताया गया है। सरस्वती, उमा, पार्वती, सती आदि शक्ति की शाश्वत परिकल्पना 'रामचरितमानस' में विवक्षित है। अन्य धार्मिक साहित्यों में इसी शक्ति के शाश्वत परिकल्पित रूप को चण्डिका, काली, दुर्गा आदि के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इन सभी परिकल्पनाओं के अंतर्गत पारिवारिक संघटन में मातृकाशक्ति का महत्त्वांकन है। पत्नी के रूप में भी इस शक्ति की अपेक्षित विवक्षा है। तुलसीदास जब 'निगमागम सम्मत की बात करते हैं, तो उन सम्प्रदायों में विवेचित मातृकाशक्ति के महत्त्वांकन को सहज ही स्वीकारते हैं। यही शक्ति विभिन्न साधना-पद्धतियों के माध्यम से व्यक्त हुई है। जैन, बौद्ध, शाक्त मत, तंत्र आदि ग्रंथों में इस तत्व की पर्याप्त व्याख्या है। 'अगस्त्यसंहिता' में महाशक्ति के वर्णन-क्रम में कहा गया है कि इसका रूप-वर्णन प्राकृतजनों के वश की बात नहीं। स्वयं भगवान ही उसका वर्णन करने में समर्थ हैं। उन्होंने स्वयं को शक्ति के अधीन बताया है:–

"चकराराधनं तस्य मन्त्ररोजन भक्तितः। कदाचिच्छ्रीशिवो रूपं ज्ञातुमिच्छुहरैः परम॥"
दिव्यवर्षशतं वेदविधिना विधिवेदिना। जजाप परमं जाप्यं रहसि स्थिरचेतसा॥
प्रसन्नोऽभूत तदा देवः श्री रामः करूणाकरः। मन्त्राराध्येन रूपेण भजनीयः सतां प्रभुः॥

दाम्पत्य-भावना का विकास भी शक्ति के इसी शाश्वत परिकल्पित रूप का औचित्य प्रस्तुत करता है। 'रामचरितमानस' के निदर्शन से जनमानस की भावनाओं की प्रस्तुति हुई है। 'रामचरितमानस' में जनमानस की भावनाओं को व्यवस्थित करने का अप्रतिम सुयोग स्थापित हुआ है। साधक या भक्त जब शक्ति की उपासना जिस लक्ष्य से करता है, उसके अनुरूप देवी की आराधना करता है। सीता की आराधना तब होती है, जब अन्य देवियाँ सहायक होकर स्वयमेव उपस्थित होती हैं। ठीक यही स्थिति सरस्वती आदि की आराधना करने के क्रम में विचारणीय है। इस आराधना पद्धति को देखकर मैक्समूलर तथा कतिपय पाश्चात्य विद्वानों ने भारतीय शक्ति तत्त्व के प्रति 'बहुदेवीवाद' का आरोप लगाया है। डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उनकी भ्रान्तियों को दूर करते हुए लिखा है कि ''भारतवर्ष में शक्ति आराधना लोकजीवन की शाश्वत अभिव्यक्ति है। यहाँ बहुदेवीवाद में एकदेवीवाद की सार्थक अभिव्यक्ति है। मोनिज्म इन पोलिथेइज्म की बात नहीं जानने के कारण ऐसी भ्रान्तियाँ उत्पन्न होती हैं।'' पराशक्ति की शाश्वत परिकल्पना को अक्षर ब्रह्म के साथ जोड़कर उपस्थित करने का विधान भारतीय साहित्य की अनुपम विशेषता है। यह पराशक्ति सत्-चित् आनन्द स्वरूप है। इसमें सर्वव्यापकता का भाव है। 'रामचरितमानस' में इस सर्वव्यापकता के भाव को जगज्जननी सीता के रूप में अभिव्यक्ति मिली है। शाक्त मत में इसे त्रिपुरसुन्दरी भी कहा जाता है। शाक्तमत में यह कामकला की जन्मदात्री मानी जाती है। यह भावना भी लोकजीवन की नैसर्गिक भावनाओं को अभिव्यक्त करती है। 'नाद, बिन्दु' माया तथा अन्य रूपों में इस शक्ति की विभिन्न अवस्थाएँ पाई जाती हैं। सती-मोह का प्रसंग तथा पार्वती के रूप में तपस्या करते हुए पुनः शिव की प्राप्ति में माया रूपी शक्ति को 'रामचरितमानस' में अभिव्यक्ति मिली है। इसे प्रेमकला के रूप में परवर्ती साहित्यकारों ने भी चित्रित किया है। 'काव्य कला तथा अन्य निबंध' में रहस्यवाद के प्रकरण में जयशंकर प्रसाद ने शक्ति का निर्वचन काम कला के रूप में किया है। उनके अनुसार -

"यह काम प्रेम का प्राचीन वैदिक रूप है।...
काम में जिस व्यापक भावना का समावेश है,
वह इन सब भावों को आवृत्त कर लेता है।
इसी वैदिक काम की, आगम शास्त्रों में,
काम-कला के रूप में उपासना भारत में विकसित हुई।"

काम-कला के इस रूप को नैतिकता और मर्यादा का पुट देकर तुलसी ने दाम्पत्य-भाव पर पर्याप्त प्रकाश डाला है।

गोस्वामी तुलसीदास ने आदिशक्ति की परिकल्पना के लिए शास्त्रसम्मत प्रणाली और परम्परा को तो ग्रहण किया ही, साथ ही उसे लोकजीवन की शक्त्यात्मक अवधारणा के अनुरूप चित्रित करने का प्रयास किया। लोक अभिरुचि के कारण उनकी शक्त्यात्मक अवधारणा अनेक पौराणिक प्रसंगों को आत्मसात् करती हुई चलती है। इसमें सुन्दरम् के साथ-साथ शिवम् की भी अभिव्यक्ति हुई है। इससे काव्य-रस के साथ-साथ जीवनरस की भी अभिव्यंजना हुई है। कबीर ने अपने को बहुरिया मानकर शक्ति के आदि स्रोत को स्वीकारा-

"पिउ मेरा राम मैं राम को बहुरिया।"

जायसी ने सौन्दर्यात्मक चेतना को विवर्द्धित करने के लिए पद्मिनी की अपार शक्ति को काव्य का विषय बनाया। सगुणवादी कवियों ने राधा और सीता के माध्यम से उसी शाश्वत परिकल्पित रूप को वाणी दी है। सगुणवादी तुलसी ने आवश्यकतानुसार इस शाश्वत रूप को जीवन के विभिन्न आयामों में देखने का प्रयास किया है। वे लौकिक एवम् आध्यात्मिक शक्तियों के विकास में सहायिका रही हैं। राम के साथ सीता वन-गमन का प्रस्ताव अकारण नहीं है। सीता शाश्वत शक्ति के रूप में समादृत होकर पल-पल पति के साथ रहने को इसलिए उत्सुक हैं कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सफलता के चरणों को राम चूम सकें। इसलिए शक्ति के हरण होने पर यदि वे बिलख-बिलख कर, फूटकर रुदन करते हैं तो आश्चर्य नहीं -

"हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी।
तुम्ह देखी सीता मृगनैनी॥"

वस्तुत: राम की यह मृगनयनी दाम्पत्य भाव के साथ जीवन की केन्द्रीयता भी निवेदित करती है। इस दाम्पत्य भाव को कबीर ने भी वाणी दी है:-

"हम तुम तुम हम और न कोई।
तुहिं अस पुरुष हमहिं तोर जोई॥" तथा...
"एक जनी जना संसार।"

कहीं-कहीं यह अविधा शक्ति माया के बंधन में बाँधकर हमें दिग्भ्रमित भी करती है

"माया महाठगिनी हम जानी,
तिरगुन फाँस लिये कर डोले।
बोले मधुरी बानी।"

तुलसी की सीता को भी मोह होता है...

"जौं नृप तनय त ब्रहम् किमि, नारि बिरहँ मति भोरि।
देखि चरित महिमा सुनत, भ्रमित बुद्धि अति मोरि॥"

इसी सीता की लौकिकता जब आध्यात्मिकता के विभिन्न सोपानों को स्पर्श करती है तब शक्तिपात, महामिलन आदि की घटनाएँ अवघटित होती हैं। शक्ति की शाश्वत परिकल्पना के सुविकसित रूप को पारिवारिक, सामाजिक, नैतिक आदर्शों के अनुरूप जितना गोस्वामी तुलसीदास ने ढालने का प्रयत्न किया उतना किसी अन्य कवियों ने नहीं। पारिवारिक परिवेश के अन्तर्गत माता, भगिनी, पत्नी, पुत्री आदि का निजी एवम् विशिष्टतम स्थान है। कौशल्या, सुमित्रा तथा अन्य चार पुत्रवधुओं के रूप में इनकी पर्याप्त अभिव्यक्ति है। जीवन के केन्द्र में शक्ति को रखकर महाकाव्यात्मक औदात्य के साथ कथा-रूपों का जो अन्यतम विकास तुलसीदास ने किया वह लोकादर्श सिद्ध हुआ। इतना ही नहीं, अत्यन्त वैज्ञानिक तथ्यों से ओतप्रोत होकर तुलसी ने वह भी दिखाने का प्रयत्न किया कि शक्ति के विघटित स्वरूप को ग्रहण करने से क्षरण के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं बचता। रावण का अहंकार शक्ति के निषेधात्मक पक्ष का अन्यतम रूप है। मन्दोदरी के लाख समझाने पर भी जब रावण नहीं मानता तब शक्ति के परिकल्पित रूप को विघटन की ओर प्रसरण करते हुए दिखाया

गया है। इस दृष्टि से शाश्वत परिकल्पना के रूप में शक्ति की प्रतिष्ठा करते हुए उसके परिवर्तित विच्छिन्न रूप को दर्शाने का प्रयत्न 'रामचरितमानस' में हुआ है।

शक्ति-तत्त्व की शाश्वत परिकल्पना को मनोवैज्ञानिक, समाजवैज्ञानिक तथा अन्यान्य संदर्भों के रूप में तुलसीदास ने विचार का विषय बनाया है। शक्ति एक भावदशा है, जो कण-कण, अणु-अणु में व्याप्त है। जड़ से जड़ पदार्थ में सोयी हुई शक्ति निहित है। चेतन-तत्त्व में इसकी सक्रियता स्पष्ट लक्षित है। प्रत्येक व्यक्ति के भीतर यह सुप्तावस्था में है। भगवान शिव जब तपस्यारत होते हैं तो अपनी शक्ति को जगाते हैं। इसकी जागृति से स्व-कल्याण संभव है। जीवन के समस्त अभावों का नाश इस शक्ति तत्त्व के कारण होता है। सीता अशोकवाटिका में विलाप करती है परन्तु उसकी शक्ति सम्प्रेषित होकर राम के जीवन में ऊर्जा का संचार करती है। परिवार और समाज के लिए इसकी अपनी उपयोगिता है। वन-गमन के पूर्व राम ने शक्ति को जिस रूप से नियंत्रित रखा वह समाजोपयोगी सिद्ध हुआ। यह शक्ति जब संघ-शक्ति के रूप में क्रियाशील हुई तब समस्त आर्य और अनार्य संस्कृति को एकता के सूत्र में बाँधकर मानवता को विजयिनी बनाने के लिए आततायी रावण का वध किया गया। बालि-वध, सुग्रीव-मैत्री तथा अन्यान्य वानर-भालू, रीछादि से मित्रता स्थापित करना अकारण नहीं है। वह शक्ति का संघीय एकात्मक रूप का प्रदर्शित होना है। पुरुष में शक्ति के इस तत्त्व की अन्तर्हिति के कारण उसे अर्द्धनारीश्वर की संज्ञा दी गई है। विश्व मानवतावाद का उदय संघीय शक्ति से संभव है। 'रामचरितमानस' में महाकाव्यात्मक प्रणाली के रूप में ढालकर इस शक्ति का सानुपातिक उपयोग किया गया है।

शक्ति की अवहेलना अथवा दुरुपयोग से जीवन और जगत् में विसंगतियों का आगमन होता है। मंथरा की बुद्धि को सरस्वती द्वारा परिवर्तित किया जाना अकारण नहीं है। बुद्धि शक्ति का प्रतीक है। इसके सदुपयोग के लिए परिस्थिति और मन:स्थिति का सम्यक् निरीक्षण अनिवार्य है। इसके अभाव में विघटन का इतिहास प्रारम्भ होता है। मंथरा को शापित बताने पर भी उसकी बुद्धि पर तरस खाने के लिए लोक-चेतना विवश है-

"नामु मंथरा मंदमति चेरी कैकई केरि।
अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि।।"

इसी संदर्भ में कैकयी का कोप-भवन में जाना भी विचारणीय है। इसके अवहेलक स्वरूप को भारतवर्ष के ऋषि-मुनियों और अनुभवकर्त्ताओं ने सूक्ष्मतापूर्वक पकड़ा और उसके निराकरण के लिए परिस्थितिजन्य मान्यताओं के अनुकूल व्यवहार करने का निर्देश दिया। राम आततायी रावण की शक्ति से जब सुपरिचित होते हैं तब उसी के अनुरूप आचरण करते हैं। शक्ति का प्रत्युत्तर शक्ति से देते हैं। युग की मान्यताओं को स्वरित करते हुए इसका सर्वाधिक सुन्दर रूप निराला की 'राम की शक्ति पूजा' में उद्घाटित हुआ है जहाँ एक सौ आठ इन्दीवर की आवश्यकता को दिखाकर शक्त्याराधन की बात कही गई है। तुलसीदास ने नैतिकता का सबल अवलम्ब ग्रहण करते हुए शक्ति की शाश्वत परिकल्पना को पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय दृष्टि से स्वस्थ संस्कृति के निर्माण में सहयोग दिया है। अक्षर अनन्य ब्रह्म की इसी आह्लादिका शक्ति के कारण विश्व में समता का भाव उत्पन्न होता है। यही शक्ति जब नृशंस व्यक्तियों के हाथ में चली जाती है तब रावण जैसा प्रकाण्ड विद्वान भी दिग्भ्रमित होकर सीता को चुराने की योजना बनाता है। ऐसे विध्वंसक अहंवाद के नाम पर विश्व-उत्पीड़न को बढ़ावा मिलता है। शक्ति के इस विघटित और संघटित रूप का एकत्र वर्णन-निरूपण 'रामचरितमानस' में हुआ है। शक्ति के इस

चक्रीय क्रम को जीवन के वर्तुलाकार सिद्धान्त के रूप में समझा और स्वीकारा जा सकता है। यह संसार विश्वमोहिनी आद्याशक्ति का चरम विकास है। इसकी अवहेलना जीवन का क्रूर पक्ष है।

शक्ति रागात्मिका वृत्ति है। इस रागात्मिका वृत्ति के उत्कर्ष को 'रामचरितमानस' के पुष्पवाटिका प्रसंग में देखा जा सकता है। यहाँ राम और सीता का प्रथम मिलन हृदय से हृदय का मिलन-व्यापार है। दोनों ओर अनुराग पल रहा है। यह ऐसी पुरातन प्रीति है जिसे दूसरा नहीं समझ सकता। तुलसी ने इसकी उत्कृष्ट व्यंजना की है...

"सुमिरि सीय नारद बचन उपजी प्रीति पुनीत।
चकित बिलोकति सकल दिसि जनु सिसु मृगी सभीत॥"

सीता की दशा के साथ-साथ राम की दशा भी अवलोकनीय है। वे अनुज लक्ष्मण से अपने हृदय की बात कहते हैं:-

"कंकन किंकिनि नुपूर धुनि सुनि।
कहत लखन सन रामु हृदयँ गुनि॥
मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही।
मनसा विस्व विजय कहँ कीन्ही॥"

रीतिकालीन कवि की मांसल सौन्दर्य चेतना में शक्ति-तत्त्व का अभाव होने के कारण ऐसा वर्णन संभव नहीं हुआ। इसमें युगसापेक्षता की अनिवार्यता भी है। तुलसी ने शक्ति की विधायिका वृत्ति को पहचाना। परिणामत: जीवन में समरसता का आगमन हुआ। दोनों ओर हृदय-पक्ष की प्रधानता होने के कारण इसमें सर्वतोभावेन कल्याण की भावना निहित है। लोकजीवन के नैतिक मानदण्डों का स्थिरीकरण इसी शाश्वत परिकल्पित रूप से संभव है। इस शाश्वत रहस्य का आभास मात्र जिसे हो जाता है उसे चमकीले प्रदर्शन अभिभूत नहीं करते। ऐसा व्यक्ति किसी बलवान की इच्छा का क्रीडा-कन्दुक नहीं बन सकता। विभीषण का अपने भाई रावण को त्याग देना राम में छिपी शक्ति का सम्यक् मूल्यांकन है। उन्होंने अपने जीवन को शुभ प्रत्यय के अनुरूप ढालने का प्रयत्न किया।

इस प्रकार महाकवि तुलसीदास ने शक्ति के विधायक आयामों को जीवन और जगत् की सम्पूर्णता में अभिव्यक्त कर उपयोगितावादी दृष्टिकोण से नैतिक मानवदण्डों के अनुरूप विचार किया है। शक्ति के विघटित आयामों को प्रस्तुत कर उससे होने वाले दुष्प्रभावों की ओर संकेत भी दिया है। रावण की सम्पूर्ण इहलीलात्मकता का विनाश इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। यह संकेत वस्तुत: इस उद्देश्य से किया गया है कि मानव जाति कभी भी शक्ति का दुरुपयोग नहीं करे। जब तक इस अभिशाप से मानव को मुक्ति नहीं मिलेगी तब तक विश्वमानवता का कल्याण असंभव है। निष्कर्षत: शक्ति सार्वभौम चेतना का पर्याय है।

मर्मान्तिक अछि फूसि 'देखावा'क फैशन

डॉ॰ वन्दना कुमारी
असिस्टेंट प्रोफेसर, मैथिली विभाग
ए.एन.कॉलेज, पटना

'फूसिक देखावा'सँ तात्कालिक लाभ जे भऽ जाए, एकर दीर्घकालिक प्रभाव अत्यन्त मर्मस्पर्शी, हृदयविदारक आ मर्मान्तक होइत छैक। तँ 'फूसि देखावा'क 'फैशन'क पाछाँ बेहाल होएबासँ नीक थिक अपनामे दीर्घकालिक आ योजनाबद्ध सुधार करब।

मैथिलीमे 'देखसी', 'देखाऊँस' आ 'देखावा' समानार्थी शब्द जकाँ रहरहाँ व्यवहार कएल जाइत अछि, मुदा से भाषा विज्ञानक दृष्टियें अल्पज्ञताक सूचक थिक। एकर फल होइत अछि जे लिखैत अथवा बजैत काल अभिव्यक्तिक समुचित अर्थ–ध्वनि प्रक्षेपित नहि भऽ पबैत अछि आ लेखक अथवा वक्ताक लक्ष्यसिद्धि नहि भऽ पबैत छनि। कैक बेर तँ अर्थक अनर्थ भऽ जाइत छैक। वस्तुतः एहि तीनू शब्दक 'अर्थ' आ 'व्यवहार'मे बहुत मोलायम आ मेंही अन्तर अछि।

'देखसी'मे एक सीमा धरि सकारात्मक अर्थ–ध्वनि रहैत अछि। जेना स्कूल जाइत नेना–भुटका लिखना लिखैत अछि। अर्थात् गुरुजी अथवा टीचर कोनो 'अक्षर', 'शब्द' अथवा 'वाक्य' लीखि देलथिन आ छात्र ओही 'अक्षर', 'शब्द' अथवा 'वाक्य'केँ देखि–देखि अपना स्लेट अथवा कापी पर बेर–बेर लिखैत अछि, अभ्यास करैत अछि। ई नेना–भुटका लेल ज्ञानार्जनक एकटा मान्य शैक्षणिक प्रक्रिया आ पद्धति थिक–देखिकऽ लीखब, अभ्यास करब आ सीखब–''करत–करत अभ्यास ते''...केर तर्ज पर। ई 'देखसी' जखन अपन सकारात्मक 'अर्थ–ध्वनि'क सीमा टपैत अछि, तँ स्वतः नकारात्मक परिधिमे प्रवेश करैत अछि। एही सीमा–नंघनसँ उपजैत अछि शब्द–'देखाऊँस'। एकर अर्थ भेल; बिना स्थान–काल–पात्र–अर्थ आ सामर्थ्यक ध्यान रखने दोसरक देखा–देखी करब अथवा नकल करब। फल्लाँ पड़ोसीक घरमे मासमे दस दिन माछ–माउँस बनैत छैक–तँ हमरो घरमे बनत। फल्लाँ पड़ोसीक ओहि ठाम मोटर कार कीनल गेलै, तँ हमहूँ कीनब। एहने–एहने गप्प आ तकर नकल भेल; 'देखाऊँस'। औ बाबू, तँ से कोना करब? माछ–माउँसक खर्च उठएबाक स्थिति अछि अहाँक? की अहाँक आर्थिक हैसियत एहन अछि जे देखा–देखी मोटरकार कीनब आ तकरा चलाएब, मेन्टेन करब? सब दिन इच्छानुसार नीके–निकुत खाएब से साधन, सरंजाम आ संसाधन अछि अहाँ लग? जँ से नहि अछि आ से बेसी काल छुच्छे नकल उतारनिहार लग नहियें रहैत छैक–तखन तँ 'देखाऊँस'मे मारल जाएब। झूठमे वा बिनु बुझने–सुझने अज्ञानतामे 'देखाऊँस' कएने लोक कुहरिते रहैए। कहबी छैक–''ईर्ष्ये नाङरि कटेलहुँ आ छओ मास व्यथे मरलहुँ''। तँ 'देखाऊँस' नहि करबाक चाही; बड़–बुजुर्ग यैह शिक्षा दैत आबि रहलाह अछि।

आब रहल 'देखावा'। 'देखावा' भेल 'देखाऊँस' अथवा मूर्खताक चरम। अहाँ 'देखाऊँसो' करू आ तकर प्रदर्शनो करू, बढ़ा–चढ़ाकऽ लोक लग तकर बखानो करू। 'देखाऊँस' तँ एक सीमा धरि स्व–केन्द्रित

क्रिया भेल; आन लोक बुझलक बुझलक, नहियों बुझलक–माने ''अपन मारि धोकड़बे जानए''। मुदा जखन ओहि 'देखाऊँस'मे सार्वजनिक प्रदर्शनक भाव जुड़ि गेलै तँ ओ भऽ गेल–'देखावा'।

एक तँ बिनु बुझने–सुझने दोसरक नकल उतारलहुँ;गलती एत्तहि भेल, आ जँ ओहि गलतीक अपने सार्वजनिक प्रदर्शन करबै, ढोलहो पीटबै तँ की इज्जति आ की प्रतिष्ठा; ''खोप सहित कबूतराय नमः''। आ से 'देखावा' जँ फूसि बात, फूसि वस्तु अथवा फूसि ज्ञानक अछि–तखन? फूसिकेँ कोनो सींघ–नाँगरि तँ होइत नहि छैक, ओकर भंडाफोड़ आइ ने काल्हि तँ होएबे करत, तखन समाजमे कि सर–कुटुम्बमे कि परिवार आ स्वजनक बीच जे अप्रतिष्ठा, अपरतीब आ अपगरानि होएत से होएबे करत–'देखावा' लेल जे वस्तु, अर्थ अथवा सरंजाम–संसाधनक हानि भेल–तकर मुँहमिलानी करबामे जानि नहि कतेक समय, श्रम आ ऊर्जा बेकार जाएत। अन्ततः तात्कालिक रोब–दाब अथवा फूसिक इज्जति–प्रतिष्ठा अर्जित करबाक लेल कएल गेल फूसि 'देखावा' अहाँकेँ आगू लऽ जएबाक बदला पाछू दिस धकियाओत, वर्तमान स्थितिसँ पाछू लऽ जाएत। माने ई अधोमुखी कृत्य भेल–तेँ सर्वथा निन्दनीय भेल। एकर अनुकरण नहि होएबाक चाही, कहियो नहि।

कहबी छैक जे सुच्चा लोक माटि पकड़ने रहैए तथा अधखिज्जू–अज्ञानी बसात जकाँ उड़ियाइए। जेना ओसबै काल सुप्पत धान ढेरी पर रहि जाइत छैक आ खखरी उड़िया जाइत छैक। एकर अर्थ भेल जे, जे ज्ञानी अछि, धनीक अछि, साधन–सम्पन्न अछि ओ वस्तुतः अपन ज्ञान अथवा अमीरी अथवा पैघत्वक प्रदर्शन नहि करैए। ओ फड़नमा गाछ जकाँ लीबल रहैए, ओकर पैर धरती पर रहैत छैक। कहलो गेल छैक जे महान आ ज्ञानी लोक विनयशील आ विनम्र होइत छथि। एकर विपरीत जे अपेक्षाकृत धनीक नहि अछि, साधन–सम्पन्न नहि अछि, ओहने लोक 'देखावा' करैए। अपन अल्प ज्ञान, पैघत्व अथवा अमीरीक सार्वजनिक प्रदर्शन करैए। सत्यसँ मुँह चोराकऽ कएल गेल एहन झूठक सार्वजनिक प्रदर्शन बादमे ओकरा क्लेश, पीड़ा आ निर्मम परिणामे टा दैत छैक।

वस्तुतः एहि 'देखावा' अथवा फूसिक 'देखावा'क आवश्यकता किएक पड़ैत छैक ? भूमंडलीकरणक दौरमे एकर रफ्तार किएक बढ़ि गेल छैक? एकर उत्तर बड़ सोझ अछि–लोक आब सफलताक 'शॉर्टकट' ताकऽमे बेहाल अछि। भौतिक सुख–साधन आ इज्जति–प्रतिष्ठाक पाछाँ फिरिशान अछि। दुनियावी चमक–दमक ओकरा हठात् आकर्षित करैत छैक। ओ ककरो सोझाँ अपन हिनताई अथवा कमजोरी उजागर नहि होमए देबए चाहैत अछि–से चाहे कोनो कीमत पर हो। मुदा ई मूर्खतापूर्ण विचार थिक। निस्सन लोक सत्यक ठोस धरातलक अवलम्ब धरैए। जँ अहाँमे कोनो कमी अछि–पाइ अथवा ज्ञानकेँ–तँ तकरा स्वीकार करब आ जायज तरीकासँ ज्ञानमे वृद्धि करब अथवा कमाईमे वृद्धि करब अहाँक लक्ष्य आ साध्य होएबाक चाही। एकर मार्ग दीर्घकालिक भने हो परंच होएत ई सुच्चा, निस्सन आ दीर्घकालीन प्रभाव बला। एकर विपरीत 'फूसिक देखावा' से दलदल थिक, जकर पाँकमे एक बेर पैर धँसल तँ फेर ओहिसँ निकलब महा–मुश्किल। कारण एक फूसिकेँ झाँपन देबाक लेल अहाँकेँ पाँच टा आर फूसि बाजऽ पड़त। एवंक्रमे अहाँ ओहि पाँकमे आपादमस्तक डूबैत चलि जाएब।

भूमंडलीकरण आ खुजल बाजारक वर्तमान दौरमे मानव स्वभाव आ व्यवहारमे जे सबसँ पैघ बदलाव आएल अछि–ताहिमे प्रमुख अछि; 'शॉर्टकट'सँ शीघ्र सफलता प्राप्त करबाक धड़फड़ी, अपनाकेँ सबसँ पैघ

आ काबिल बुझबाक प्रवृत्ति, ककरो आगाँ नहि झुकबाक अहं, चमक–दमक प्राप्त करबाक सुषुप्त इच्छाक जागब आ तकरा प्राप्त करबाक लेल गैर–वाजिब ब्योंत सब करब, आदि–आदि। तैँ लोक अपन पैघत्व प्रदर्शन आ तुरत–फुरत सफलताक लेल 'फूसिक देखावा'कऽ रहल अछि। एखन ई ओहने 'फैशन'क अवस्थामे अछि, जेना कोनो टीवी कि मोबाइल फोन कि कम्प्यूटर कि साड़ी–कपड़ा आदिक 'फैशन'; जकर 'फैशन' प्रत्येक छओ–आठ मास पर बदलि जाइत छैक।

लोक घरमे सामान रहितो, आवश्यकता नहि रहितो जेना टीवी कि मोबाइल फोन कि कपड़ा–लत्ता नबका 'फैशन'क नाम पर बदलि लैए अथवा बदलि लेबए चाहैए, तहिना 'फूसि देखावा'क फैशन चलि रहल अछि। चिन्ता एहि बातक अछि जे जँ ई 'फैशन' अहाँक व्यक्तित्वक स्थायी अंग वा स्वभाव बनि जाएत तखन तँ यथार्थ धरि वापसी अत्यन्त मुश्किल भऽ जाएत। अपना जड़िसँ उखड़ल गाछ जकाँ कि गाछ सँ टूटल पात जकाँ। 'फूसि देखावा'क एहने 'फैशनेबल' लोक लेल एकटा खिस्साक उदाहरण उचित होएत। खिस्सा एना अछि जे–

कोनो एकटा चोर पकड़ल गेल। राजाक समक्ष ओकर पेशी भेलैक। मोकदमा चललै। सुनवाई भेलै। चोरक अपराध साबित भऽ गेलै। राजा ओकरा सजा सुनबैत विकल्प देलथिन जे कोनो एकटा सजाक चुनाव ओ अपना लेल कऽ सकैत अछि। राजा सजा सुनौलथिन–''एक सय कोड़ाक मारि खएबाक अथवा एक सय काँच पियाजु खएबाक''। चोर अपना भरि बड़ तजबीज लगौलक–कोड़ा खाइ कि काँच पियाजु। बहुत सोच–विचारक बाद ओ बाजल–''ओ काँच पियाजु खाएत''। निश्चित दिन सजाक तामील भेल। ओ काँच पियाजु खाए लागल। पाँच–सात टा काँच पियाजु खाइत–खाइत ओ नोरे–झोरे एकट्ठा भऽ गेल। मुँह लहरए लगलैक। ओ राजासँ विनती कएलक जे ओकरा पियाजु नहि खाएल होएतैक, तैँ ओ कोड़ेक मारि खाएत। राजा मानि गेलथिन। हुक्म भेलैक तँ जल्लाद ओकरा कोड़ा मारए लागल। आठ–दस कोड़ा पड़िते ओ बपहारि काटए लागल। चोर पुनः राजासँ प्रार्थना कएलक जे ओ पियाउजे खाएत। राजा फेर मानि गेलथिन। फेरे दू–चारि पियाजु खाइते ओकर प्राण जाए लगलैक। पियाजु खाएब रोकि पुनः कोड़ाक मारि खाएब गछलक। फेर दस–पाँच कोड़ा पड़लैक। पुनः पियाजु पर घुरि आएल। एवंक्रमे ओ बेरा–बेरी कोड़ा आ काँच पियाजु खाइत रहल आ अन्तमे ओ एक सय कोड़ा आ एक सय काँच पियाजु दुनू खएलक।

कहबाक आशय ई जे सत्यक अवहेलना करब, अपन सामर्थ्यक अनदेखी करब महापाप थिक। 'फूसिक देखावा'सँ तात्कालिक लाभ जे भऽ जाए, एकर दीर्घकालिक प्रभाव अत्यन्त मर्मस्पर्शी, हृदयविदारक आ मर्मान्तक होइत छैक। तैँ 'फूसि देखावा'क 'फैशन'क पाछाँ बेहाल होएबासँ नीक थिक अपनामे दीर्घकालिक आ योजनाबद्ध सुधार करब। अपन ज्ञान, सामर्थ्य आ संसाधनमे जायज तरीकासँ वृद्धि करब–जे अहाँकेँ दीर्घकालिक लाभ आ स्थायी प्रभाव देत। 'फैशन' आ ताहूमे 'फूसिक देखावा'क 'फैशन'क लोभमे फँसब तँ अपन, अपन परिवार आ अपन स्वजन–परिजन सबहक जीवन नारकीय बनएबैक। नीक आ बेजाय दुनू अहींकेँ करबाक अछि, अपने करबाक अछि। सत्यक मार्गक अवलम्बन, इमानदारीपूर्ण कर्तव्यशीलता आ निष्ठापूर्ण श्रम–समर्पण हरदम सकारात्मक, उत्पादक, प्रभावकारी आ स्थायी महत्त्वक होइत छैक–से ध्यान राखी।

Online Teaching Options amid COVID-19 Crisis

The benefit of online education is that it enables students to attend classes from any place. It also enables colleges to reach out to a larger network of students rather than being limited by regional boundaries.

Dr. Abhishek Dutta
Assistant Professor
Deptt. of Economics
A.N.College, Patna

Covid-19 in 2021 has forced universities across India, and the world indeed, to suspend physical classrooms and shift to online classes. To combat against the coronavirus outbreak, the University Grant Commission (UGC) said to take preventive measures, maintain social distancing and encouraged to utilise this time productively by engaging in online learning. There are many online education websites offering their content for free now and students who are sitting at home can make full use of this learning material.

There are several ICT initiatives of the MHRD, UGC and its Inter-University Centres (IUCs) - Information and Library Network (INFLIBNET) and Consortium for Educational Communication (CEC), in the form of digital platforms. These digital platforms can be accessed by the teachers, students, and researchers in Universities and Colleges for learning.

HRD Ministry has provided 10 online learning websites and resource to study for free during the Coronavirus lockdown. Students at college level can access these courses and study material for free.

1. **SWAYAM Online Courses :** SWAYAM is a programme initiated by Government of India and designed to achieve the three cardinal principles of Education Policy viz., access, equity and quality. The objective of this effort is to take the best teaching learning resources to all, including the most disadvantaged. SWAYAM seeks to bridge the digital divide for students who have hitherto remained untouched by the digital revolution and have not been able to join the mainstream of the knowledge economy[1]. Courses provided through SWAYAM are free to students; however, students who want certifications must register and pay a small fee to receive a certificate upon successful completion of the course.
2. **UG/PG MOOCs :** UG/PG MOOCs hosts learning material of the SWAYAM UG and PG (Non-Technology) archived courses[2].

3. **e-PG Pathshala :** e-PG Pathshala hosts high quality, curriculum-based, interactive e-content containing 23,000 modules (e-text and video) in 70 Post Graduate disciplines of social sciences, arts, fine arts and humanities, natural & mathematical sciences.
4. **e-Content courseware in UG subjects :** e-Content courseware in 87 Undergraduate courses with about 24,110 e-content modules is available on the CEC website at http://cec.nic.in.
5. **SWAYAMPRABHA :** Swayamprabha is a group of 32 DTH channels providing high-quality educational curriculum-based course contents covering diverse disciplines such as arts, science, commerce, performing arts, social sciences and humanities subjects, engineering, technology, law, medicine, agriculture, etc to all teachers, students and citizens across the country interested in lifelong learning[3].

   These channels are free to air and can also be accessed through your cable operator. The telecasted videos/lectures are also as archived videos on the Swayamprabha portal.
6. **CEC-UGC YouTube channel :** CEC-UGC YouTube channel provides access to unlimited educational curriculum-based lectures absolutely free[4].
7. **National Digital Library :** National Digital Library of India (NDLI) is a virtual repository of learning resources which is not just a repository with search/browse facilities but provides a host of services for the learner community. NDLI is designed to hold content of any language and provides interface support for 10 most widely used Indian languages. It is built to provide support for all academic levels including researchers and life-long learners, all disciplines, all popular forms of access devices and differently-abled learners. It is designed to enable people to learn and prepare from best practices from all over the world and to facilitate researchers to perform inter-linked exploration from multiple sources[5].
8. **Shodhganga :** Shodhganga is a digital repository platform of 2, 60,000 Indian Electronic Theses and Dissertations for research students to deposit their Ph.D. theses and make it available to the entire scholarly community in open access[6].

9. **e-Shodh Sindhu :** e-Shodh Sindhu provides current as well as archival access to more than 15,000 core and peer-reviewed journals and a number of bibliographic, citation and factual databases in different disciplines from a large number of publishers and aggregators to its member institutions including centrally-funded technical institutions, universities and colleges that are covered under 12(B) and 2(f) Sections of the UGC Act[7].
10. **Vidwan :** Vidwan is a database of experts which provides information about experts to peers, prospective collaborators, funding agencies policymakers and research scholar in the country. Faculty members are requested to register on the Vidwan portal to help expand the database of experts[8].

The benefit of online education is that it enables students to attend classes from any place. It also enables colleges to reach out to a larger network of students rather than being limited by regional boundaries. Online lectures can also be registered, archived, and shared for later viewing. This helps students to access the learning materials whenever it is convenient for them.The COVID-19 virus appears to have no end in sight worldwide, and several health experts caution that substantial change in case numbers can take some time. Because of the summer influx, some parents, teachers, and faculty are having to make tough decisions about their ability to safely return to the classroom and hence online teaching has come for rescue.

---

[1]https://swayam-central.appspot.com/about
[2]https://epgp.inflibnet.ac.in/
[3]https://www.swayamprabha.gov.in/
[4]https://www.youtube.com/user/cecedusat
[5]https://ndl.iitkgp.ac.in/
[6]https://shodhganga.inflibnet.ac.in/#
[7]https://ess.inflibnet.ac.in/
[8]https://vidwan.inflibnet.ac.in/

WATER SCARCITY

India and the World

Dr. Amrita Chakraborty
Asst. Prof. Deptt. of Chemistry
A.N. College, Patna

India has 17% of the world population living within her territory and 20% of the animals of the world, both domestic and wild living in this land too.

Almost 70% of the Earth's surface is covered with water yet it is only 0.05% of the mass of the Earth. Presently in different part of the earth men and animals facing acute shortage of clean water for their consumption which is called water scarcity. Water crisis mean in simple terms non availability of clean water to the people and animals of a specific geographical area. Such areas are called water stressed areas. The numbers of such water stressed areas are increasing year after year at an alarming rate all over the world. It appears that the total domicile land of this planet would be converted to water stressed areas within a span of 50 years. It is the high time to launch awareness campaign to save the water resources of the earth from misuse and mismanagement for the interest of the animals and environment of this planet. Otherwise the lives and environment of our beautiful planet may be in jeopardy.

Ancient Indian civilization was greatly indebted to it rivers and the monsoon. The major seven rivers made this delta a fertile one for agriculture and provided water routes connecting cities and trade centres of this sub continent. It is aptly called that the rivers are the life line of Indian civilization. India has 17% of the world population living within her territory and 20% of the animals of the world, both domestic and wild living in this land too. But India's share of the water of the world is 4% only which is not adequate to meet the needs of this huge population of men and animals. Moreover with 1545 cubic meter of per capita availability of water India is already water stressed country (per capita water availability below 1750 cubic meters considered being inadequate). It is to be noted that distribution of underground as well as surface water is not uniform all over the Indian peninsula. In some parts of the country it is very unfavourable. Traditionally the western parts of the country, particularly Rajasthan and Maharashtra suffer from paucity of water. Recently, Tamilnadu and Karnataka have experienced serious scarcity of water posing problems to normal civil life. Situation was so grave that local authorities and

administration has a difficult time to address the problem.

History witnessed many wars for territorial supremacy. But war experts have predicted that in future war would be fought for water, more specifically for control over the water resources of that soil. Incidentally 80% of the surface water in India flows from the rivers coming down from China. Rivers like Mekong and Brahmaputra flows from China to India carrying huge water indispensable for our lives and environment. China is a super power for its gigantic economy and massive military build up. They have the desire to prevail over south Asian nations for their regional supremacy. China has decided to build eleven mega size dams for their domestic purpose on the river Bramhaputra. When these proposed Dams would be completed very little water to be left for flowing the rivers in India. Even the mighty Brahmaputra may dry up. The situation is not very congenial for India to pursue China to offer India the legitimate share of water of these rivers. Only an International body supported by UNO may find out a breakthrough in this grim situation. The world hopefully believe that good sense would prevail and the problem to be resolved amicably on the discussion table.

Winning is the only choice when there is a war. Losing has the worst consequences. War strategists destroyed the water resources of the enemy camp to ruin them. Even application of poison into the water has been resorted to. Takeover of the water of the enemy camp forcefully particularly in water stressed areas was a common practice between the warring groups. It was swelling Yamuna that kept Marathas and the forces of Durrani away from clashes in the 3rd war of Panipath. The water played a significant role to decide the fate ofthe war. However, the super strategist and experienced Durrani crossed the Yamuna by a floating bridge and attacked the Marathas from behind. The history of civilization has been

shaped by the Victor's of war. Now space mining for useful minerals and water is not a distant dream and the stakeholders would lead to a war in the space for water in near future as assumed by the war experts. The earth provides enough to satisfy everyman's need but not everyman's greed. Is there any possibility to satisfy the greed of the people in the space? Where space mining is not a distant dream it may materialize in near future. Mining in Moon, Mars and the asteroids may fetch precious metals as well as water, called **Blue Gold,** from the space. The present global water market is of 7000 Million US dollars per year so harvesting the **Blue Gold** from the space would be a wind fall for the stakeholders.

In Cape Town, the Mayor of the city who was holding the post since 2011 alerted the people of the city on November 2017 that availability of water of the city to be nil by April/May 2018. She termed it as the zero days. This catastrophe can only be avoided by imposition of restriction on water use by the citizens. A maximum of 87 litres per capita consumption may be allowed, she warned. Otherwise the drinking water supplies to come down to 25 litres per day. This Cape Town problem is a result of man driven climate change and mismanagement.

The position in India is no different. Unfortunately people of India are also suffering from poor water quality. Cities like Chennai, Pune etc suffering from acute water scarcity. The Sustainable Development Goals (SDGs) could not be achieved with such dismal performance in quality of drinking water because these development goals are interdependent. Other important goals like 'Health for all' and 'low mortality rate' couldn't be achieved in such deplorable water supply condition.

The alarm bell is ringing loud. It is estimated that underground water resources of 21 major cities of India would be exhausted by 2022-23. It must be mentioned here that India is the highest user of underground water in the world. Moreover 80% of that water is used for agriculture where it is 60% to 70% in the other parts of the globe. This indicates misuse

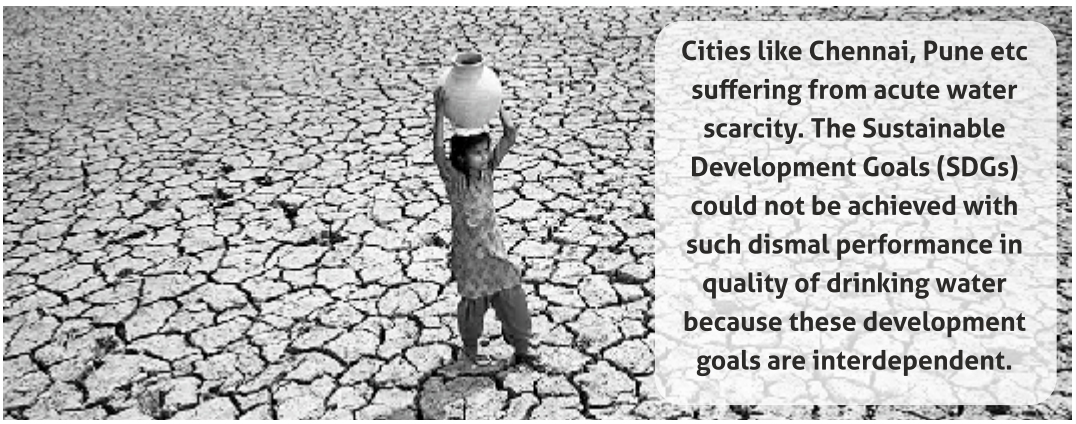

Cities like Chennai, Pune etc suffering from acute water scarcity. The Sustainable Development Goals (SDGs) could not be achieved with such dismal performance in quality of drinking water because these development goals are interdependent.

of underground water is going unabated in our country. It is also learnt that 60% of the water used in agriculture is lost due to defective technology - a glaring example of is management of water resources.

India attained freedom more than 70 years ago yet about 30% of the people have no access to safe drinking water and 70% has no basic sanitation. India is a water stressed country with 4% share of global water and it is a serious challenge to be addressed. We have the resources and the technology to combat the menace but we require massive fund and huge manpower to sensitize the people and make them aware of the situation. Government can't do it alone; participation of NGOs and private initiatives is a must. Bangalore based NGO Arghyam has done well in this field.

Fortunately we have personalities like Rohini Nilekani and Azim Premji whose contribution made them water heroes in India. Azim Premji has donated generously to provide new technology to the underprivileged to avail safe drinking water at an affordable cost. With all the available funds and manpower we have to wage a battle against the misuse and mismanagement of water to avoid a zero day where there would be no water in this planet other than the tears in human eyes.

Here also winning is the only choice for our survival. Water has enormous power both creative and destructive. These two aspects have fascinated the artists and the poets across the globe. The people of the world have been influenced by the works of the poets and the artists. The great Italian artist Leonardo da Vinci has explored the beauty and power of water in his immortal paintings. Modern prominent sculptors and painters has fascinated by the flow of liquid on the earth comparing it with the flow of blood on human body.

In 2013, UN invited the young artists of the world to work on a theme 'Water where does it come from?' Among the thousands entries received from the countries top prize awarded to an artist from Thailands depicted a child playing with fish, turtle and unicorn in a planet covered with water and vegetation. This was to provoke people around the world to understand water and protection of our environment including the ocean

भक्ति आंदोलन : स्वरूप और प्रेरक तत्व

डॉ॰ विद्या भूषण
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
ए.एन. कॉलेज, पटना।

अपने अखिल भारतीय स्वरूप में यह धार्मिक–सांस्कृतिक आंदोलन युगीन समय, समाज और सच की गहन पड़ताल करता है। विषमताओं की अनुर्वर भूमि को कर्म, ज्ञान, भक्ति और चिंतन के खाद–पानी से समरसता की उर्वर भूमि में बदल देता है और उस नवसृजित भूमि में प्रेम के बहुविध रंग–बिरंगे फूल खिलाता है। प्रेम इस भक्ति आंदोलन का सबसे बड़ा मूल्य है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में भक्ति काल एक ऐसे समय विशेष (आचार्य शुक्ल के अनुसार संवत 1375 वि.से संवत 1700वि.) का सूचक है, जिसमें हिन्दी भाषा और साहित्य ने अनेकानेक कलात्मक ऊँचाइयों का स्पर्श किया। भक्ति आंदोलन 'जागो जागो आया प्रभात, बीती वह, बीती अंध रात, झरता भर ज्योतिर्मय प्रपात पूर्वांचल बाँधो, बाँधो किरणें चेतन' (निराला की कविता–तुलसीदास) की भावना से ओतप्रोत, भारतीय संस्कृति और समाज में जागरण का पहला व्यापक नवोन्मेष था। वह प्रेम, समन्वय, समरसता के महीन धागों से मध्ययुगीन समाज को नये सिरे से रचता–गढ़ता है। यह एक ऐसा आंदोलन था जिसमें जड़ सामाजिक व्यवस्था, सामंती सोच, दरबारीपन, भोग–विलास और युद्ध की प्रवृत्ति आदि पर गहरा कुठाराघात किया गया और अकुंठ भाव से मानवता, सदाचार, परोपकार और अध्यात्म का विराट काव्य–लोक रचा गया।

अपने अखिल भारतीय स्वरूप में यह धार्मिक–सांस्कृतिक आंदोलन युगीन समय, समाज और सच की गहन पड़ताल करता है। विषमताओं की अनुर्वर भूमि को कर्म, ज्ञान, भक्ति और चिंतन के खाद–पानी से समरसता की उर्वर भूमि में बदल देता है और उस नवसृजित भूमि में प्रेम के बहुविध रंग–बिरंगे फूल खिलाता है। प्रेम इस भक्ति आंदोलन का सबसे बड़ा मूल्य है। सबसे बड़ा दर्शन भी। 'पद्मावत' में जायसी कहते हैं :

''मानुस पेम भएउ बैकुंठी।
नाहिं त काह छार एक मूँठी।।''

अर्थात मनुष्य के भीतर प्रेम की जो भावना है,उसी भावना का नाम स्वर्ग है या फिर कह सकते हैं कि मनुष्य इस प्रेम के सहारे ही स्वर्ग को प्राप्त कर सकता है, अन्यथा इस जीवन में है ही क्या? केवल एक मुट्ठी राख है। अलाउद्दीन का मार्ग छल, प्रपंच,लोभ और ताकत का मार्ग है। उसका जीवन एक मुट्ठी राख ही बनकर रह जाता है। 'पद्मावत' के अंत में जायसी अलाउद्दीन के हवाले से कहते हैं–

'छार उठाइ लीन्हि एक मूँठी। दीन्हि उड़ाइ पिरथमी झूठी।।
जौ लगि ऊपर छार न परई। तब लगि नाहिं जो तिस्ना मरई।।'

प्रेम की भावना ही व्यक्ति को विशेष बनाता है। रत्नसेन, पद्मावती, नागमती आदि चरित्र इसी भावना के कारण अमर–अजर हैं।

'धनि सो पुरुख जस कीरति जासू। फूल मरै पै मरै न बासू।''

तुलसी रामचरितमानस (अयोध्या काण्ड) में दृढ़ता के साथ कहते हैं कि राम मानवीय प्रेम के प्रतीक पुरुष हैं।

'रामहि केवल प्रेमु पिआरा। जानि लेउ जो जाननिहारा।।'

शिवकुमार मिश्र अपनी पुस्तक 'भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य' में इस आंदोलन के स्वरूप और फैलाव पर रोशनी डालते हुए लिखते हैं कि 'ऐसा जबर्दस्त ज्वार उफनता है कि उत्तर–दक्षिण, पूर्व–पश्चिम सब मिलकर एक हो जाते हैं, सब एक दूसरे को प्रेरणा देते हैं, एक दूसरे से प्रेरणा लेते हैं, और मिलजुलकर भक्ति के एक ऐसे विराट नद की सृष्टि करते हैं, उसे प्रवाहमान बनाते हैं, जिसमें अवगाहन कर राष्ट्र के कोटि–कोटि साधारण जन सदियों से तप्त अपनी छाती शीतल करते हैं अपनी आध्यात्मिक तृषा बुझाते हैं, एक नया आत्मविश्वास, जिंदा रहने की, आत्मसम्मान के साथ जिंदा रहने की, एक शक्ति पाते हैं।' सम्पूर्ण देश की शिराओं में भक्ति की भावधारा प्रवाहित होती है। भक्ति की यह भावधारा नैराश्य के वातावरण में भटक रहे व्यापक जनसमुदाय के हृदय में प्रेम और करुणा का अलख जगाती है। इस भक्ति आंदोलन से लोक में जागृति का भाव पैदा होता है। समाज में एक नई ऊर्जा का संचार होता है। कबीर कहते हैं–

'संतों भाई आई ग्यान की आँधी रे।
भ्रम की टाटी सबै उडांणी, माया रहै न बांधी।।'

वहीं तुलसीदास अपने जीवन के मर्म को समझते हुए कहते हैं–

'अब लौं नसानी, अब न नसैहों रामकृपा भव निसा सिरानी,
जागे फिर न डसैहो।' (विनय पत्रिका) तुलसीदास

भक्ति आंदोलन में धर्म कर्मकांडों पर आरूढ़ होकर नहीं आता। यहाँ धर्म की संवेदनशीलता, सहिष्णुता और उसका लचीलापन देखने को मिलता है। यहाँ धर्म का फैलाव जितना वाह्य जगत में होता है, उससे कहीं अधिक जीव के हृदय में होता है। इससे मनुष्य के 'अंतःकरण का आयतन' विस्तृत होता है। यहाँ धर्म साधना का नहीं भावना का विषय है और अपने भावनात्मक स्वरूप में भी यह दृष्टि–सम्पन्न है। तुलसी रामचरितमानस (उत्तरकाण्ड) में कहते हैं –

'पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई
निर्नय सकल पुरान बेद कर। कहेउँ तात जानहिं कोबिद नर'

स्पष्ट मानवीय दृष्टिकोण के सहारे यह समाज की मान्यताओं, मूल्यों और परंपराओं का स्वीकार और प्रतिकार की चयनधर्मी प्रक्रिया अपनाकर उसका पुनर्मूल्यांकन और पुनर्निर्माण करता है। शुक्ल जी कहते हैं कि ''शासन की पहुँच प्रवृत्ति और निवृत्ति की बाहरी व्यवस्था तक ही होती है। उनके मूल या मर्म तक नहीं होती। भीतरी या सच्ची प्रवृत्ति–निवृति को जागरित रखनेवाली शक्ति कविता है जो धर्म–क्षेत्र में भक्ति भावना को जगाती रहती है। भक्ति धर्म की रसात्मक अनुभूति है। अपने मंगल और लोक–मंगल का संगम

उसी के भीतर दिखाई पड़ता है। इस संगम के लिए प्रकृति के क्षेत्र के बीच मनुष्य को अपने हृदय के प्रसार का अभ्यास करना चाहिए। जिस प्रकार ज्ञान नर–सत्ता के प्रसार के लिए है, उसी प्रकार हृदय भी।'' (चिंतामणि भाग : 01–रामचंद्र शुक्ल)।

अब सवाल उठता है कि हिन्दी साहित्य में भक्ति आंदोलन और भक्ति–काव्य के उदय के प्रमुख कारण क्या हैं? जैसा कि रामचंद्र शुक्ल अपनी पुस्तक 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में काल विभाजन के कारण और उसकी सीमा पर बात करते हुए कहते हैं कि ''जब कि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ–साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है।... जनता की चित्तवृत्ति बहुत कुछ राजनीतिक, सामाजिक, सांप्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थिति के अनुसार होती है। अतः कारणस्वरूप इन परिस्थितियों का किंचित् दिग्दर्शन भी साथ ही साथ आवश्यक होता है।'' यह सर्वविदित है कि कथ्य बदलने से शिल्प भी स्वतः ही बदल जाता है। कथ्य के भीतर से ही शिल्प का आविर्भाव होता है और कथ्य में परिवर्तन तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक स्थितियों में आए परिवर्तनों से होता है। इन्हीं स्थितियों में आए परिवर्तनों को आधार बनाकर विभिन्न आलोचकों और इतिहासकारों ने आदिकाल के वातावरण से भिन्न भक्ति–आंदोलन के उदय के कारणों की गहन जांच–पड़ताल की है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी साहित्यः उद्भव और विकास' में भक्ति आंदोलन के प्रेरणा स्रोत से संबंधित जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन के मत का व्यापक उल्लेख किया है। ग्रियर्सन ने भक्ति आंदोलन के देशव्यापी प्रसार को लक्ष्य करके कहा है कि ''हम अपने को ऐसे धार्मिक आंदोलन के सामने पाते हैं, जो उन सब आंदोलनों से कहीं अधिक व्यापक और विशाल है, जिन्हें भारतवर्ष ने कभी देखा है। यहाँ तक कि बौद्ध धर्म के आंदोलनों से भी अधिक व्यापक और विशाल है, क्योंकि उसका प्रभाव आज भी वर्तमान है।'' भक्ति आंदोलन के उद्भव और स्वरूप पर बात करते हुए ग्रियर्सन कहते हैं कि ''बिजली की चमक के समान अचानक इस समस्त पुराने धार्मिक मतों के अंधकार के ऊपर एक नई बात दिखाई दी। कोई हिन्दू यह नहीं जानता कि यह बात कहाँ से आई और कोई भी इसके प्रादुर्भाव का कारण निश्चय नहीं कर सकता।'' इस मत से स्पष्ट है कि ग्रियर्सन भक्ति आंदोलन के उद्भव के कारणों को लेकर अनिश्चय की स्थिति में थे। वे अनुमान लगाते हैं कि वह ईसाइयत की देन है। ''ईस्वी सन् की दूसरी या तीसरी शताब्दी में नेस्टोरियन ईसाई मद्रास प्रेसीडेंसी के कुछ हिस्सों में आ बसे थे और रामानुजाचार्य को इन्हीं ईसाई भक्तों से भावावेश और प्रेमोल्लास के धर्म का संदेश मिला।'' यह सच है कि भक्ति आंदोलन के स्वरूप और महत्व को समझने वाले आलोचकों में ग्रियर्सन अग्रणी रहे हैं पर उसके उद्भव के कारणों पर उनकी अटकलबाजी बेहद बचकानी है। उनके अनुमान–प्रमाण पर ईसाइयत का स्पष्ट रंग और प्रभाव परिलक्षित होता है। हजारी प्रसाद द्विवेदी उनके इस अनुमानपरक मत को एक सिरे से खारिज करते हैं और इसका 'उत्तर देना भी बेकार' मानते हैं।

डॉ.ताराचंद अपनी पुस्तक 'इन्फ्लुएन्स ऑफ इस्लाम ऑन इंडियन कल्चर' में भक्ति आंदोलन के उदय को इस्लाम से जोड़ते हैं। उनके मत पर विशद चर्चा दिनकर ने अपनी पुस्तक 'संस्कृति के चार अध्याय में की है। वे कहते हैं कि–''भक्ति के विषय में यह कहना ठीक नहीं है कि यह इस्लाम की देन है। कृष्ण और राम पूजा के साथ भक्ति का उदय भी भारतवर्ष में बहुत पहले ही हो चुका था, बल्कि ईसा के दो सौ वर्ष पूर्व भक्ति के अंकुर इस देश में उगने लगे थे और छठी सदी के आलवार संतों की वाणी एवं गुप्त कालीन

साहित्य में तो भक्ति रूप धर कर खड़ी हो चुकी थी। हाँ, यह संभव है कि भक्ति की सरिता में सूफियों के कारण कुछ और तरंगें उठने लगी हो।'' दिनकर भक्ति आंदोलन का स्रोत भारत की गौरवशाली संस्कृति और साहित्य में देखते हैं–''भक्ति का निश्चित प्रमाण महाभारत और गीता में प्रत्यक्ष है, बाद में वह भागवत में निरूपित हुई और रामानुज आदि के साथ जोरों से फैली। गीता और रामानुज के बीच के काल में भक्ति को अनुपस्थित देखकर ही लोगों को आशंका होती है कि भक्ति आंदोलन हिन्दुत्व के लिए नया आंदोलन था। किंतु वह नया नहीं था। गीता और रामानुज के बीच की कड़ी ये अलवार संत थे।''

भक्ति–आंदोलन के उद्‌भव की एक महत्वपूर्ण आलोचना आचार्य रामचंद्र शुक्ल अपनी पुस्तक 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में प्रस्तुत करते हैं। इस आंदोलन के राजनीतिक कारणों की तलाश करते हुए वे इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि–'देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिन्दू जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिए वह अवकाश न रह गया। उसके सामने ही उसके देवमंदिर गिराये जाते थे, देवमूर्तियाँ तोड़ी जाती थीं और पूज्य पुरुषों का अपमान होता था और वे कुछ भी नहीं कर सकते थे। ऐसी दशा में अपनी वीरता के गीत न तो वे गा ही सकते थे और न बिना लज्जित हुए सुन ही सकते थे। आगे चलकर जब मुस्लिम साम्राज्य दूर तक स्थापित हो गया तब परस्पर लड़ने वाले स्वतंत्र राज्य भी नहीं रह गये। इतने भारी राजनीतिक उलटफेर के पीछे हिन्दू जनसमुदाय पर बहुत दिनों तक उदासी छाई रही। अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान से जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था?'' शुक्ल जी की मान्यता है कि मुसलमानों के आक्रमण से हिन्दू जाति में आत्मविश्वास का बिखराव हुआ और आगे चलकर इसी आत्मविश्वास और आत्मगौरव को पुनः सुदृढ़ और एकीकृत करने के लिए वे भक्ति की शरण में गये। शुक्ल जी ने राजनीतिक कारणों के साथ साथ धार्मिक कारणों की भी पड़ताल की है। उनके अनुसार–''व्रजयानी सिद्ध, कापालिक आदि देश के पूरबी भागों में और नाथपंथी जोगी पश्चिमी भागों में रमते चले आ रहे थे। इसी बात से इसका अनुमान हो सकता है कि सामान्य जनता की धर्म–भावना कितनी दबती जा रही थी...कर्म और भक्ति ही सारे जनसमुदाय की संपत्ति होती है। हिन्दी साहित्य के आदिकाल में कर्म तो अर्धशून्य विधिविधान, तीर्थाटन और पर्व स्नान इत्यादि के संकुचित घेरे में पहले से बहुत कुछ बद्ध चला आता था। धर्म की भावात्मक अनुभूति या भक्ति, जिसका सूत्रपात महाभारत काल में और विस्तृत प्रवर्तन पुराणकाल में हुआ था, कभी कहीं दबती, कभी कहीं उभरती किसी प्रकार चली भर आ रही थी।'' उदाहरण स्वरुप शुक्ल जी तुलसीदास रचित पँक्तियाँ भी उद्धृत करते हैं–'गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोग' शुक्ल जी की यह दृढ़ धारणा थी कि मुसलमानों के हिन्दुस्तान आने के समय यहाँ सच्चे धर्मभाव का बहुत कुछ ह्रास हो गया था। इस स्थिति में परिवर्तन लाने के लिए बहुत कड़े धक्कों की आवश्यकता थी।

शुक्ल जी के अनुसार सामान्य जनता पर सिद्धों–नाथों का प्रभाव भले पड़ रहा था पर शास्त्रज्ञ विद्वान उनके प्रभाव से मुक्त हो अपने कार्य में प्रवृत्त रहते थे। उनके शास्त्रार्थ भी हो रहे थे और खंडन मंडन के ग्रंथ भी रचे जा रहे थे। ब्रह्म सूत्रों पर, उपनिषदों पर, गीता पर भाष्यों की परम्परा विद्वन्मंडली के भीतर चली आ रही थी जिससे परम्परागत भक्ति मार्ग के सिद्धांत पक्ष की कई रूपों में नूतन विकास हुआ।

शुक्ल जी अपने अनुसंधान से दो निष्कर्ष पर पहुंचते हैं –

1. ''भक्ति का जो सोता दक्षिण की ओर पहले से ही आ रहा था उसे राजनीतिक परिवर्तन के कारण शून्य पड़ते जनता के हृदय क्षेत्र में फैलने के लिए पूरा स्थान मिला। रामानुजाचार्यने शास्त्रीय पद्धति से जिस

नंदन अछत कैसे आनिए उर और।" इसलिए हम कह सकते हैं कि भक्ति काव्य में हताशा के स्वर नहीं हैं।

द्विवेदी जी भक्ति आंदोलन को 'भारतीय चिंता का स्वाभाविक विकास' मानते हैं और उसे दक्षिण भारत के भक्ति आंदोलन से जोड़ते हैं। वे भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य के मूल में लोकधर्म को देखते हैं जिसे वे तंत्रों, आगमों, बौद्धमत के परवर्ती रूपों, नाथों–सिद्धों की अन्तर्धारा से उपजा मानते हैं, वहीं शुक्ल जी उसे मूलतः वैष्णव भक्ति की विकसित अभिव्यक्ति मानते हैं, जिसकी गति मुसलमानों के आगमन के बाद तीव्र हो जाती है। दरअसल भक्ति काल के उद्भव को लेकर जो शुक्ल जी और द्विवेदी जी के मत में अंतर दिखता है वह उनके बीच इतिहास दृष्टि के अंतर को लेकर है। रामस्वरूप चतुर्वेदी अपनी पुस्तक 'हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास' में इसे स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि–''शुक्ल के लिए समाज अपने सभी वर्गों के साथ, जिसे वे समष्टि रूप में 'जनता' कहते हैं, साहित्यिक परिवर्तन और विकास के लिए जिम्मेदार है, द्विवेदी जी इसके लिए प्रमुख कारक 'लोक' को मानते हैं, जो समाज का अपेक्षया पिछड़ा वर्ग है।... समाज के सभी वर्गों की क्रिया –प्रतिक्रिया पर ध्यान रखने के कारण रामचंद्र शुक्ल के लिए इस्लाम का आगमन उनके विवेचन में गुणात्मक महत्व रखता है, जबकि हजारी प्रसाद द्विवेदी लोक को केन्द्र में रखते हैं जहाँ इस्लाम का प्रभाव और उसके लिए क्रिया–प्रतिक्रिया उतना महत्व नहीं रखती, वह केन्द्र में नहीं हाशिए पर है, रुपये में बारह आना नहीं, चार आना हो तो हो।''

यहाँ ध्यान देने वाली बात यह है कि द्विवेदी जी भी बारह आने में की बात करते हुए चार आना श्रेय तो प्रकारांतर से इस्लाम को दे ही डालते हैं।

बच्चन सिंह, शुक्ल जी और द्विवेदी जी के मतों का तुलनात्मक विश्लेषण करते हुए अपनी पुस्तक 'हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास' में कहते हैं कि ''हिन्दी के विद्वान कभी शुक्ल जी के मत का समर्थन करते रहे तो कभी द्विवेदी जी के मत का। जरूरत यह है कि दोनों मतों से हटकर विचार किया जाय क्योंकि दोनों आधे–आधे सच हैं।'' बच्चन सिंह जहाँ एक ओर शुक्ल जी के मत को लक्ष्य करके कहते हैं कि ''आरंभ में मुसलमानों में आक्रमणकारी प्रवृत्तियाँ थीं, विशेषकर बादशाहों और उनके सामंतों में। लेकिन नानक के अलावा किसी भक्त कवि ने मुस्लिमों के विरोध में कुछ नहीं लिखा।' मुसलमान और हिन्दू एक साथ मिल जुलकर रहने का प्रयत्न कर रहे थे। इतिहास में उसका साक्ष्य हो या न हो, पर साहित्य में है।'' वहीं दूसरी ओर द्विवेदी जी को लक्ष्य करके कहते हैं कि–'यदि मुसलमान न आए होते तो न संत काव्य लिखा जाता और न सूफी काव्य। क्षितिमोहन सेन और इतिहासकार ताराचंद ने स्पष्ट रूप से संत कवियों पर सूफियों का प्रभाव स्वीकार किया है। 'बच्चन सिंह का विचार यहाँ शुक्ल जी के विचार का समर्थन करते नजर आता है। शुक्ल जी ने भी हिन्दू मुसलमान के बीच एक सामान्य भक्ति मार्ग के विकास को चिह्नित किया था, जिसकी पृष्ठभूमि सिद्धों–नाथों ने निर्मित की थी। बच्चन सिंह मानते हैं कि अपने धर्म और समाज में उपेक्षित–सामान्य हिन्दू मुसलमान उच्च वर्ग के विरूद्ध उठ खड़े हुए। मुसलमानों के आगमन के फलस्वरूप संगीत, खानपान, पहनावा, वास्तुकला, चित्रकला आदि में विचित्र मिश्रण हुआ। एक ओर दो संस्कृतियाँ आपस में मिल रही थीं तो दूसरी ओर मुल्ला–मौलवी, पंडे–पुरोहित भेदभाव की खाई को और चौड़ी करने में लगे हुए थे।' लेकिन द्विवेदी जी को लेकर बच्चन सिंह की यह धारणा उचित नहीं है कि उन्होंने इस्लामिक आक्रमण के प्रभाव को नजरअंदाज कर दिया है। अपनी पुस्तक 'कबीर' में द्विवेदी जी लिखते हैं कि– ''जिस युग में कबीर आविर्भूत हुए, उससे कुछ ही पूर्व भारतवर्ष के इतिहास में एक अभूतपूर्व घटना घट चुकी थी। यह घटना इस्लाम जैसे एक सुसंगठित संप्रदाय का आगमन था। इस घटना ने भारतीय धर्म मत और

सगुण भक्ति का निरूपण किया था उसकी ओर जनता आकर्षित होती चली आ रही थी''

2. ''एक तो प्राचीन सगुणोपासना का यह काव्य क्षेत्र तैयार हुआ, दूसरी ओर मुसलमानों के बस जाने से देश में जो नयी परिस्थिति उत्पन्न हुई उसकी दृष्टि से हिन्दू–मुसलमान दोनों के लिए एक सामान्य भक्ति मार्ग का विकास भी होने लगा।'' उनके अनुसार इस सामान्य भक्ति मार्ग के विकास के लिए सिद्धों–नाथों के द्वारा मार्ग निकाला जा चुका था।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने रामचंद्र शुक्ल के मत पर प्रतिक्रिया करते हुए अपनी पुस्तक 'हिन्दी साहित्य : उद्‌भव और विकास' में विस्तृत आलोचना प्रस्तुत की है। यहाँ शुक्ल जी की धारणाओं पर कटाक्ष भी है और उस पर अपना तार्किक मंतव्य भी–''यह भी बताया गया है कि जब मुसलमान हिन्दुओं पर अत्याचार करने लगे तो निराश हिन्दू लोग भगवान का भजन करने लगे। यह बात अत्यंत उपाहासास्पद है कि जब मुसलमान लोग उत्तर भारत में मंदिर तोड़ रहे थे, तो उसी समय अपेक्षाकृत निरापद दक्षिण में भक्त लोगों ने भगवान की शरणागति की प्रार्थना की। मुसलमानों के अत्याचार के कारण यदि भक्ति की भावधारा को उमड़ना था तो पहले उसे सिंध में और फिर उत्तर भारत में प्रकट होना चाहिए था, पर हुई वह दक्षिण में।'' 'द्विवेदी जी आगे यह भी लिखते हैं कि–''असल बात यह है कि जिस बात को ग्रियर्सन ने 'अचानक बिजली की चमक के समान फैल जाना' लिखा है वह ऐसा नहीं है। उसके लिए सैकड़ों वर्ष से मेघखंड एकत्र हो रहे थे। फिर भी ऊपर–ऊपर से देखने से लगता है कि उसका प्रादुर्भाव एकाएक हो गया।''

हजारी प्रसाद द्विवेदी भक्ति काल के उत्थान को विदेशी आक्रांताओं की प्रतिक्रिया में न ढूंढकर उसे लोक के जातीय स्वरूप में ढूंढते हैं। उसे मानवीय सरोकारों में तलाशते हैं।

द्विवेदी जी रामचंद्र शुक्ल को लक्ष्य करके अपनी पुस्तक 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' में कहते हैं–''दुर्भाग्यवश, हिन्दी साहित्य के अध्ययन और लोक–चक्षु–गोचर करने का भार जिन विद्वानों ने अपने ऊपर लिया है, वे भी हिन्दी साहित्य का सम्बन्ध हिन्दू जाति के साथ ही अधिक बतलाते हैं और इस प्रकार अनजान आदमी को दो ढंग से सोचने का मौका देते हैं–एक यह कि हिन्दी साहित्य एक हतदर्प पराजित जाति की सम्पत्ति है, इसलिए उसका महत्व उस जाति के राजनीतिक उत्थान–पतन के साथ अंगागि–भाव से सम्बन्ध है, और दूसरा यह कि ऐसा न भी हो तो भी वह एक निरन्तर पतनशील जाति की चिन्ताओं का मूर्त प्रतीक है, जो अपने आप में कोई विशेष महत्व नहीं रखता। मैं इन दोनों बातों का प्रतिवाद करता हूँ। और अगर ये बातें मान भी ली जाएं तो भी यह कहने का साहस करता हूं कि फिर भी इस साहित्य का अध्ययन करना नितांत आवश्यक है, क्योंकि दस सौ वर्षों तक दस करोड़ कुचले हुए मनुष्यों की बात भी मानवता की प्रगति के अनुसंधान के लिए केवल अनुपेक्षणीय ही नहीं, बल्कि अवश्य ज्ञातव्य वस्तु है। ऐसा करके इस्लाम के महत्व को भूल नहीं रहा हूँ लेकिन जोर देकर कहना चाहता हूँ कि अगर इस्लाम नहीं आया होता तो भी इस साहित्य का बारह आना वैसा ही होता जैसा आज है।''

शुक्ल जी की इस धारणा से सहमत नहीं हुआ जा सकता है कि भक्ति काव्य एक हतदर्प पराजित जाति की रचना है। भक्ति काल से जुड़े सभी कवि गहरे आत्मसम्मान और आत्मविश्वास से भरे हुए हैं। कुभंनदास स्पष्ट ढंग से कहते हैं–'संतन को कहा सीकरी सों काम? तुलसी राम–दरबार के आगे राज दरबार को ठुकराते हुए आत्म–गौरव से भर कर कहते हैं–'अब का तुलसी होहिंगे नर के मनसबदार।' नंदकिशोर नवल अपनी पुस्तक 'सूरदास' में अकबर और सूरदास की वार्ता का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि जब अकबर ने अपने यश से संबंधित कुछ पद सूर को सुनाने के लिए कहा तो सूर कहते हैं– 'नाहिंन रह्यो मन में ठौर–नंद

समाज–व्यवस्था को बुरी तरह झकझोर दिया था। उसकी अपरिवर्तनीय समझी जाने वाली जाति–व्यवस्था को पहली बार ठोकर लगी थी। सारा भारतीय वातावरण संक्षुब्ध था। बहुत से पंडित जन इस संक्षोभ का कारण खोजने में व्यस्त थे, और अपने अपने ढंग पर भारतीय समाज और धर्म मत को सँभालने का यत्न कर रहे थे।'' द्विवेदी जी के इस वक्तव्य से यह स्पष्ट है कि वो न केवल मुसलमानों के आगमन से उत्पन्न स्थितियों और प्रभावों को स्वीकारते हैं बल्कि उसकी गहन छानबीन भी करते हैं।

आचार्य द्विवेदी की स्थापनाओं से अपनी सहमति व्यक्त करते हुए डॉ.नामवर सिंह ने प्रश्न किया है–''यदि भगवद् भक्ति के लिए आक्रांत मुसलमान ही जिम्मेदार थे तो स्वयं मुसलमान भक्त कृष्ण की शरण में क्यों आए और जो मुसलमान कृष्ण की शरण में नहीं आए वे निर्गुण भगवान और सूफी मार्ग की ओर क्यों गए।'' और वे इसके जवाब में स्वयं कहते हैं कि– ''इसमें तो कोई शक नहीं कि भगवान की शरण ढूंढने के लिए साधारण जनों के बीच से उठने वाले भक्त किसी–न–किसी बड़े कष्ट के कारण ही गए, किन्तु इस कष्ट के लिए मुसलमान आक्रमणकारियों और शोषकों को दोषी ठहराना ठीक नहीं है।'' –(भक्ति आंदोलन और काव्य–गोपेश्वर सिंह)।

नामवर सिंह भक्ति आंदोलन के उद्भव को लोक और शास्त्र के द्वन्द्व का परिणाम मानते हैं न कि इस्लाम और हिन्दू धर्म के संघर्ष का। शिवकुमार मिश्र अपनी पुस्तक 'भक्ति आंदोलन और भक्ति–काव्य' में कहते हैं कि– ''विभिन्न वर्गों तथा वर्ण–व्यवस्था से जर्जर, सामाजिक ऊँच–नीच की भावना से आक्रांत, नाना प्रकार के धार्मिक भेदभाव, कर्मकाण्ड एवं विधि–निषेधों से परिचालित भारतीय जीवन में भक्ति आंदोलन का प्रादुर्भाव और उसके द्वारा उद्घोषित 'मनुष्य सत्य' उस समय की एक ऐसी अभूतपूर्व घटना एवं अनुभव था, जिसकी मिसाल नहीं है।''

वहीं मुक्तिबोध भक्ति आंदोलन के उद्भव के कारणों को युगीन सामाजिक शक्तियों और संदर्भों में तलाशने की कोशिश करते हैं। अपने लेख 'मध्ययुगीन भक्ति आंदोलन का एक पहलू' में वे कहते हैं कि–''किसी भी साहित्य का ठीक–ठीक विश्लेषण तब तक नहीं हो सकता, जब तक हम उस युग की मूल गतिमान सामाजिक शक्तियों से बनने वाले सांस्कृतिक इतिहास को ठीक–ठाक न जान लें।''

मार्क्सवादी साहित्यकारों और इतिहासकारों ने भक्ति आंदोलन के विवेचन में वर्ण–व्यवस्था उत्पीड़न और दिल्ली सल्तनत के आर्थिक ढांचे द्वारा युगीन सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों में उत्पन्न की गई हलचल और तथाकथित अवर्णों पर उस हलचल का पड़ने वाले प्रभावों पर अपनी व्याख्या को विशेष रूप से केन्द्रित किया है। साथ ही वे तथाकथित निम्न वर्ण के लोगों के द्वारा एक क्रांतिकारी सामन्त विरोधी लहर के उत्थान के रूप में, तथा आर्थिक स्थिति में आए बदलाव के कारण उसकी धार्मिक–आध्यात्मिक परितृप्ति के नये आयामों की तलाश के रूप में उसकी पहचान और परख करते हैं। इरफान हबीब का मानना है कि दिल्ली सल्तनत की स्थापना के कारण जब बड़े पैमाने पर सड़क और भवन निर्माण कार्य आरंभ हुआ तो निम्न वर्णों की आर्थिक स्थिति में अचानक सुधार हुआ, जिससे उनके अंदर सामाजिक प्रतिष्ठा की भूख जगी। इसी नयी परिस्थिति ने निर्गुण संत काव्य को जन्म दिया, जो कि भक्ति आंदोलन का प्रस्थान बिंदु है। वहीं के.दामोदरन इस भक्ति आंदोलन को सामंतवाद के विरुद्ध व्यापारियों और दस्तकारों की प्रतिक्रिया से जोड़कर देखते हैं। रामविलास शर्मा 'परम्परा का मूल्यांकन' में कहते हैं–''भक्ति आंदोलन विशुद्ध देशज आंदोलन है। वह सामन्ती समाज की परिस्थितियों से उत्पन्न हुआ था। वह मूलतः इस सामन्ती समाज – व्यवस्था से विद्रोह का साहित्य है।''

भक्ति आंदोलन और भक्ति–काव्य एक ऐसा विषय है, जिसपर अनेक आलोचकों ने जमकर लिखा है। कहीं उनके विचारों में समानताएं हैं तो कहीं विषमताएं। कहीं ऊपर से देखने पर उनमें भिन्नताएं नजर आती है पर गहराई में उतरने पर एक–दूसरे के विचारों का वे विकास ही कर रहे होते हैं। कहीं उनके विचार साथ–साथ चल रहे होते हैं तो कहीं अलग रास्ता बनाते हुए चलते हैं। कोई भी जटिल और संश्लिष्ट सांस्कृतिक–साहित्यिक परिघटना वस्तुतः किसी एक कारण से प्रस्फुटित नहीं होती है, उसके कई कारण होते हैं और जाहिर है उन कारणों की पड़ताल भी कई कोणों, सूत्रों और पद्धतियों से ही संभव है। भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य की व्याख्या भी बड़े कैनवास की अपेक्षा रखती है।

अधिकांश विद्वान इस बात पर सहमत हैं कि जिस भक्ति आंदोलन का आरंभ दक्षिण भारत से हुआ उसके प्रवर्तक आलवार भक्त (4थी शताब्दी से 9वीं शताब्दी तक) ही थे। उनकी संख्या 12 थी जिसमें एक स्त्री संत अंडाल भी थीं। इनमें से अधिकांश तथाकथित निम्न जातियों से आते थे। इनकी भक्ति भावना पारम्परिक वैष्णव भक्ति से अलग थी। उन्होंने भक्त और भगवान के बीच किसी भी माध्यम को नहीं अपनाया। कर्मकांडों और वाह्याचारों में उनकी आस्था नहीं थी। आलवारों ने अपनी भक्ति को वैयक्तिक उपासना के विपरीत सामाजिक संदर्भों से जोड़ा और सामूहिक उपासना पर बल दिया। उनकी भक्ति का वैचारिक आधार शास्त्र नहीं लोक था। अपनी भावावेशमय भक्ति की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने देशभाषा का सहारा लिया। कालांतर में उनकी भक्ति भावना को दार्शनिक आधार रामानुजाचार्य देते हैं–''उन दिनों दक्षिण में आज की ही भांति जाति–विचार जटिलतर अवस्था में था, फिर भी रामानुजाचार्य–जैसे सद्वंशजात,सर्वजन–श्रद्धेय आचार्य ने तथाकथित नीच जातियों में प्रचलित एकांतिक भक्ति धर्म को बहुमान दिया और देशी भाषा में लिखित शठकोप, तिरुवल्लुवर प्रभृति के शास्त्रों को वैष्णवों के वेद का सम्मान देकर समादर दिया।'' –(हिन्दी साहित्य उद्भव और विकास–हजारी प्रसाद द्विवेदी)।

भक्ति आंदोलन के सूत्रपात में शंकराचार्य की भी बड़ी भूमिका है। उन्होंने अद्वैतवाद दर्शन की प्रतिष्ठा की और माया का एक निषेधात्मक पक्ष प्रस्तुत किया। इस चिंतन में उपास्य और उपासक की सत्ता के भेद को नकारा गया। शंकराचार्य के इस नवीन दर्शन की प्रतिक्रिया में अनेक दार्शनिक सम्प्रदायों और सिद्धांतों का उदय हुआ। भक्ति आंदोलन को एक अखिल भारतीय स्वरूप और वैचारिक आधार प्रदान कराने में रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, विष्णुस्वामी,निम्बार्क, वल्लभाचार्य आदि आचार्यों का महत्वपूर्ण योगदान है।

उत्तर भारत में भक्ति आंदोलन के सूत्रपात का श्रेय रामानंद (भक्ति द्राविड़ ऊपजी लाए रामानंद–प्रगट किया कबीर ने सप्तद्वीप नवखंड) और वल्लभाचार्य को दिया जाता है। उत्तर भारत में वैष्णव धर्म का प्रचार पहले से ही चला आ रहा था। साथ ही सिद्धों–नाथों द्वारा पूर्व से निर्मित लोक–धर्म का वैचारिक पृष्ठाधार भी उपलब्ध था,जिसे मुसलमानों के आक्रमण से तीव्रता प्राप्त हुआ।यह आंदोलन सामाजिक कुरीतियों, अमानवीय व्यवस्थाओं तथा सामाजिक विषमताओं पर प्रहार करते हुए ज्ञान और भक्ति का एक ऐसा विराट लोक रचता है, जहाँ हर पल प्रेम की वर्षा होती रहती है। प्रेम की इसी बारिश में भीगकर युगीन कवि व्यापक सत्य तक पहुँचता है–

'भीजै चुनरिया प्रेमरस–बूँदन।
आरती साज के चली है सुहागिन,
प्रिय अपन को ढूँढन।' –कबीर

इकबाल की काव्य रचनाओं में राजनीतिक विचार

(समाजवाद से फासीवाद तक)

डॉ॰ मणि भूषण कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर
उर्दू विभाग
ए.एन.कॉलेज, पटना

यूं तो इकबाल के राजनीतिक विचार उनकी काव्य रचनाओं में बिखरे हुए मिलते हैं जहां राजनीति के साथ–साथ अन्य सांस्कृतिक विषय भी छंदबद्ध किए गए हैं मगर कुछ रचनाएं ऐसी हैं जो आरंभ से अंत तक राजनीति से ही संबंधित हैं। इनमें भी कुछ ऐसी हैं जो पुरानी सामंती व्यवस्था से संबंधित हैं।

सर डॉक्टर मुहम्मद इकबाल (1877–1938) अपनी काव्य रचनाओं में जिस तरह धर्म और संप्रदाय को आलोचना का केंद्र – बिंदु बना रहे थे, उसकी तुलना में राजनीति से उनकी दिलचस्पी किसी तरह कम नहीं थी। एक तरफ उनके यहां लेनिन और कार्ल मार्क्स पर नज्में मिलती हैं तो दूसरी तरफ मुसोलिनी को भी उन्होंने शेर के लिबास में प्रस्तुत किया है। नेपोलियन, नादिर शाह और टीपू सुल्तान भी इकबाल के काव्य रचना क्षेत्र में आ गए हैं। इस्लाम धर्म को अपनी रचनाओं का विषय बनाने वाले इकबाल ने 1917 ईस्वी की वोल्शेविक क्रांति और समाजवाद के समर्थन में अगर अच्छे खासे शेर लिखे तो पूंजीवाद और लोकतंत्र के विरोध में भी वह पीछे नहीं रहे। "ज़र्ब–ए–कलीम" (काव्य–संकलन, प्रकाशन–1936) में तो "सियासत–ए– मशरिक व मगरिब" (प्राच्य एवं पाश्चात्य राजनीति) नाम से इन विषयों से भरा, पूरा एक अध्याय ही मौजूद है। इकबाल स्वयं भी सक्रिय राजनीति में रुचि लेते थे। यह रूचि किस हद तक बढ़ी हुई थी, इसका अनुमान मुस्लिम लीग की इलाहाबाद कान्फ्रेंस में अध्यक्ष की हैसियत से उनकी उपस्थिति से लगाया जा सकता है। यूं तो इकबाल के राजनीतिक विचार उनकी काव्य रचनाओं में बिखरे हुए मिलते हैं जहां राजनीति के साथ–साथ अन्य सांस्कृतिक विषय भी छंदबद्ध किए गए हैं मगर कुछ रचनाएं ऐसी हैं जो आरंभ से अंत तक राजनीति से ही संबंधित हैं। इनमें भी कुछ ऐसी हैं जो पुरानी सामंती व्यवस्था से संबंधित हैं। यहां केवल उन रचनाओं पर ध्यान केंद्रित किया जाएगा जिनसे पूर्णतः उनके राजनीतिक विचार प्रकट होते हैं ।

इस क्रम में नज़्म "लेनिन (खुदा के हुजूर में)" से चर्चा आरंभ की जा सकती है। महान राजनीतिज्ञ, नेता और विचारक "लेनिन" ने पूंजीवाद के विकल्प के रूप में समाजवाद और साम्यवाद के स्वप्न देखे, इस स्वप्न को व्यावहारिक रूप देने के लिए लेनिन के नेतृत्व में नवंबर 1917 की रूसी क्रांति इतिहास का गवाह बनी। समाज को परिवर्तित करने से रोकने में धर्मगुरुओं और धार्मिक विचारों का शाश्वत महत्व रहा है, लेनिन इस बात को भली भांति समझते थे। इसलिए उन्होंने भाववाद के बदले जिंदगी और समाज को तार्किक दृष्टि से परखा और अपने लिए भौतिकवादी दर्शन से मार्गदर्शक विनियमों का चयन किया। यही विरोधाभासी दृष्टिकोण इकबाल और लेनिन के बीच मौजूद है। इकबाल के लिए तो भाववादी विचार विशेषकर प्राच्य भाववाद बड़ी चीज थी। इसलिए उन्होंने लेनिन को प्रलय (क़यामत) के बाद की स्थिति में पेश कर दिया। अपना अपराध स्वीकार करने से (Confession) शुरुआत करते हुए इकबाल उस जगह पहुंचते हैं जहां

भाववादी और भौतिकवादी विचार एक साथ छंदबद्ध हुए हैं। उदाहरण देखिए:

रानाई ए तामीर(1) में, रौनक में, सफा(2) में
गिरजों से कहीं बढ़ के हैं बैंकों की इमारात(3)

ये इल्म, ये हिकमत(4), ये तदब्बुर(5), ये हुकूमत(6)
पीते हैं लहू, देते हैं तालीम ए मसावात(7)

इसी उत्साह में आगे बढ़ते हुए इकबाल उस वैज्ञानिक आविष्कार के महत्व को कमतर आँकने लगते हैं जिसकी बुनियाद पर पूरी दुनिया में औद्योगिक समाज की स्थापना हुई। लेनिन के लिए भी ऐसा विचार करना असंभव था। शेर देखिए –

वह कौम(8) के फैजान ए समावी(9) से हो महरूम(10)
हद उसके कमालात(11) की है बर्क व बुखारात(12)

इस नज्म के अंतिम शेर की पहली पंक्ति में इकबाल, लेनिन के शब्दों में यह प्रश्न करते हैं:

कब डूबेगा सरमाया परस्ती(13) का सफ़ीना(14)

जिस व्यक्ति ने जन क्रांति के माध्यम से पूंजीवाद (सरमाया परस्ती) की नाव (सफ़ीना) को उलट दिया, उसके शब्दों से इस प्रकार का कातर भावपूर्ण प्रश्न प्रस्तुत करना कितना उपयुक्त है? इकबाल अपने काव्यगत उद्देश्य के जोश में लेनिन के असली व्यक्तित्व और विचारों को ही भुला देते हैं। नतीजे में एक भाववादी लेनिन का व्यक्तित्व, अस्तित्व में आ जाता है और क्रांतिकारी लेनिन का अस्तित्व समाप्त हो जाता है।

समाजवादी विचारक्रम की दूसरी नज़्म "ज़र्ब ए कलीम" में शामिल "कार्ल मार्क्स की आवाज" है। "इंग्लैंड की पार्लियामेंट गप्पबाजी का अड्डा है"...लेनिन के इस कथन को शेर के रूप में प्रस्तुत करते हुए इस नज़्म की शुरुआत होती है। पंक्ति देखिए –

"ये इल्म व हिकमत की मोहरा बाजी(15), ये बहस व तकरार की नुमाइश(16)"

मार्क्स ने पूंजीवाद का विस्तृत विश्लेषण अपनी किताब "पूंजी" में किया और यही किताब पूंजीवाद के विरोध और साम्यवादी क्रांति का तार्किक ज्ञानवर्धक संदर्भ बनी। मार्क्स के जमाने में और मार्क्स के पहले और बाद के काल में कई अर्थशास्त्री, पूंजीवाद के समर्थन में अपने लेखन का जादू दिखा चुके थे। इकबाल भी अर्थशास्त्र के जानकारों में से हैं। उनकी पहली किताब "इल्म उल अक्तसाद" (प्रकाशन वर्ष–1903) का संबंध भी इसी विषय से है। इकबाल अर्थशास्त्र की प्रसिद्ध शब्दावली "लॉरेन्ज कर्व" (Lorenz Curve) को व्यंग्य का निशाना बनाते हैं –

तेरी किताबों में ऐ हकीम ए मआश(17) रखा ही क्या है आखिर
खुतूत ए ख़मदार(18) की नुमाइश, मरेज़ व कजदार(19) की नुमाइश

इस संक्षिप्त नज़्म में इकबाल, मार्क्सवादी विचारधारा के प्रशंसक दिखाई देते हैं।

मार्क्सवादी विचारधारा से संबंधित उनकी तीन और नज्में क्रमशः "इश्तिराकियत" (समाजवाद), "इंकलाब" (क्रांति) और "बोल्शेविक रूस" शीर्षक से "ज़र्ब ए कलीम" के इसी भाग में मौजूद हैं। "इश्तिराकियत" शीर्षक

से कही गई नज़्म में वह सर्वप्रथम रूस की प्रगति से प्रभावित दिखाई देते हैं। प्रारंभ में ही इकबाल कहते हैं–

कौमों की रविश(20) से मुझे होता है ये मालूम
बे सूद(21) नहीं रूस की ये गर्मी ए रफ्तार(22)

नज़्म की भूमिका रूसी साम्यवाद से आरंभ करने के बाद इसके अंत में वह मुसलमान युवकों को कुरान के हवाले से प्रेरित करते हैं। इस प्रकार भौतिकवादी दर्शन, भाववाद के दायरे में चला आता है।

"इंकलाब" सिर्फ चार पंक्तियों की नज़्म है। इसमें कोई दार्शनिक बहस नहीं है। बोल्शेविक क्रांति से प्रभावित होकर इकबाल कह उठते हैं –

दिलों में वलवला ए इंकलाब(23) है पैदा
करीब आ गई शायद जहान ए पीर(24) की मौत

साम्यवाद और रूस से नजर आ रही इकबाल की मोहब्बत का तंतु, "बोल्शेविक रूस" शीर्षक से लिखी नज़्म में बिखर जाता है। इकबाल इससे पहले की नज़्मों में साम्यवाद और उसके प्रमुख नेता लेनिन को धर्म से जोड़ कर दिखा चुके थे। लेनिन की मृत्यु के बाद रूस में जब स्टालिन के नेतृत्व में सत्ता की बागडोर आई, तब धार्मिक स्थलों के रूप परिवर्तित किए जाने लगे। गिरजाघरों की जगह पर स्कूल और अस्पताल खड़े होने लगे। इकबाल का मन–मस्तिष्क भला इसके लिए कहां तैयार होता? वह "लेनिन (खुदा के हुजूर में)" नज्म में पहले ही कह चुके थे–

गिरजों से कहीं बढ़ के हैं बैंकों की इमारात

स्पष्ट है कि इकबाल गिरजे को अधिक ऊंचा देखना चाहते थे। उधर बोल्शेविक रूस की जनकल्याणकारी नीतियों ने परलोक से पहले दुनिया को संवारने का प्रयास किया। ऐसी दुनिया के निर्माण का प्रयास, जिसमें हाशिए पर अब तक पड़ा इंसान, जिंदगी बिताने की थोड़ी सी सुविधाएं प्राप्त कर ले। यूँ तो धर्म सादगी की ही शिक्षा देते हैं। फिर इन धार्मिक स्थलों की साज–सज्जा, मानव–जीवन को किस दिशा में ले जाएगी? वैसे भी परलोक की फिक्र उन्हें अधिक होती है, जिनकी दुनिया संवर गई है। निर्धन व्यक्ति तो सामान्य सुख–सुविधाओं की प्राप्ति की प्रार्थना ही करता रहता है। अब यह दुनिया बहुमत के रहने के योग्य हो जाए तो फिर परलोक का मार्ग भी आसान होगा। संक्षेप में यह कि इकबाल साम्यवाद के संबंध में प्रारंभ में बहुत उत्सुक थे मगर एक समय के बाद वह इससे किसी हद तक विलग होने लगे।

इकबाल की धर्म परायणता इस सीमा तक बढ़ी हुई है कि वह धर्म से अलग किसी के कार्यों को प्रशंसा की दृष्टि से नहीं देखते। "ज़र्ब ए कलीम" में ही शामिल नज़्म "मशरिक"(पूरब) में वह तुर्की के मुस्तफा कमाल पाशा और ईरान के रजा शाह पहलवी पर कुछ इस तरह लिखते हैं:

न मुस्तफा में न रजा शाह में नमूद(25) इसकी
कि रूह ए शर्क(26) बदन की तलाश में है अभी
मेरी खुदी(27)भी सजा की है मुस्तहक़(28)लेकिन
जमाना दार व रसन(29) की तलाश में है अभी

समकालीन इतिहास और राजनीति इस बात की गवाह है कि मुस्तफा कमाल पाशा और रजा शाह पहलवी के प्रयासों से तुर्की और ईरान, अंतरराष्ट्रीय राजनीति में अत्यधिक असरदार और मजबूत देश के रूप में अब तक मौजूद हैं। संभवतः इकबाल उस बदलती और बनती नई दुनिया को नहीं पहचान सके।

इकबाल आधुनिक बुर्जुआ शासन पद्धति "लोकतंत्र" पर भी अपने विचार छंदबद्ध करते हैं। नज़्म "जम्हूरियत" (लोकतंत्र) में वह स्पष्ट शब्दों में अपने विचार पेश करते हुए कहते हैं:

जम्हूरियत इक तर्ज ए हुकूमत (30) है कि जिसमें
बंदों को गिना करते हैं तौला नहीं करते

एक दूसरी नज़्म "मशरिक व मगरिब"(पूरब और पश्चिम) में इसी विषय पर इकबाल ने कहा है:

यहां मरज़ (31) का सबब (32) है गुलामी व तकलीद (33)
वहां मरज़ का सबब है निजाम ए जम्हूरी (34)

इकबाल ने लोकतंत्र को बेहद कम करके आंका। आज तक की दुनिया में लोकतंत्र सबसे लोकप्रिय और उत्तम शासन पद्धति के रूप में सामने आया है। इकबाल को लोकतंत्र का वह रूप देखने का अवसर प्राप्त नहीं हो सका, जिसकी पूरी दुनिया कायल है। 1929 में पहली बार इंग्लैंड में सभी वयस्कों को मताधिकार प्रदान किया गया। इधर 1938 में इकबाल की मृत्यु हो गई। 1929 के परिवर्तनों ने जो प्रभाव छोड़ा, उससे इकबाल और उनकी नज्में अपरिचित हैं। इसलिए लोकतंत्र पर उनसे किसी समृद्ध विचार की अपेक्षा ही बेकार है। प्रस्तुत पंक्तियों की सीमाओं पर विचार करने से यह प्रतीत होता है कि इकबाल मताधिकार के संबंध में उच्च वर्गीय दृष्टि के पोषक हैं। इससे यह नहीं समझना चाहिए कि वह लोकतंत्र के विरोधी हैं। जब वह कहते हैं कि:

"बंदों को गिना करते हैं तौला नहीं करते"

तो यह कोई नई बात नहीं होती। इकबाल से पहले "जेरेमी बेंथम" ने "वेटेज वोटिंग" (मपहीजंहम टवजपदह) की बात कही थी। यानी किसी शख्स के लिए उसकी सामाजिक, शैक्षणिक या किसी दूसरी हैसियत को ध्यान में रखकर एक विशेष संख्या में मत देने का अधिकार सुनिश्चित किया जाना चाहिए। लोकतंत्र का ये ऐतिहासिक कार्य है कि इसने प्राचीन काल से चली आ रही उच्च वर्गीय मताधिकार प्रणाली को भंग कर दिया। इस एक मोर्चे पर उसने क्षेत्र विशेष में तमाम नागरिकों को एक स्तर तक पहुंचा दिया है। इकबाल की विद्वतापूर्ण दृष्टि, काल विशेष को प्रस्तुत करने के कारण यहां तक नहीं पहुंच सकी।

इकबाल ने जिन लोगों पर नज़्में कही हैं, उनमें "मुसोलिनी" अकेला व्यक्ति है जिस पर इकबाल की दो नज्में मिलती हैं। यह दोनों नज्में "मुसोलिनी" शीर्षक से क्रमशः "बाल ए जिब्रील"(प्रकाशन वर्ष–1935) और "ज़र्ब ए कलीम" में संकलित हैं। मुसोलिनी के व्यक्तित्व में आखिर ऐसा क्या है कि इकबाल ने मुसोलिनी से इस कदर निकटता प्रकट की? 1932 में तीसरे गोलमेज सम्मेलन से वापस लौटने के दौरान इकबाल इटली गए थे और वहां उनकी मुलाकात मुसोलिनी से हुई। इस संबंध में नुरुल हसन नकवी ने लिखा है:

"इकबाल रोम पहुंचे तो उनकी मुलाकात मुसोलिनी से हुई। मुसोलिनी आकर्षक और सुंदर होने के अलावा अच्छा बर्ताव करने वाला भी था। इकबाल उससे बहुत प्रभावित हुए। मसनवी असरार ए खुदी का

अंग्रेजी अनुवाद मुसोलिनी के अध्ययन में आ चुका था। खुदी का महत्व उसके दिल पर छा गया था इसलिए उसने इकबाल से अनुरोध किया कि वह इटली के नौजवानों को कुछ नसीहत करें। इटली के नौजवान जोश और कर्तव्य निष्ठा के भाव से भरे थे। इसलिए इकबाल उनके बड़े प्रशंसक थे। रोम और रोम के निवासियों के बारे में इकबाल की भावनाओं का अनुमान उनकी नज़्म "मुसोलिनी" से लगाया जा सकता है.."

(इकबाल शायर और मुफ़क्किर (उर्दू); नूरुल हसन नकवी; एजुकेशनल बुक हाउस; अलीगढ़; 2000; पृष्ठ–27)

नूरुल हसन नकवी ने जिस "मुसोलिनी" नज़्म का उदाहरण दिया है, वह "बाल ए जिब्रील" का भाग है। इस नज़्म में इकबाल ने इटली के निवासियों को सचेत एवं निर्देशित करने के साथ–साथ अपनी भावनाओं को भी छंदबद्ध किया है। रोम के अतीत को याद करते हुए इकबाल लिखते हैं:

रोम–तुल कुबरा(35)! दिगर–गूँ(36) हो गया तेरा जमीर(37)

यूरोप के इतिहास के विद्यार्थी इस बात से परिचित होंगे कि 1453 में सल्जूक तुर्कों ने कुस्तुनतुनिया को जीत लिया और इसी के साथ रोमन साम्राज्य के भाग्य का सितारा हमेशा के लिए डूब गया। फिर प्रथम महायुद्ध (1914–1918) में विजेताओं का साथ देने के बावजूद इटली के हाथ कुछ नहीं लगा। इकबाल संभवतः इटली की ऐसी हालत पर दुःख व्यक्त कर रहे हैं। यहीं से इटली में फासीवाद और मुसोलिनी का उत्कर्ष होता है। 1932 तक आते–आते मुसोलिनी के इरादे गुप्त नहीं रह गए थे। अतीत के तानाशाही शासनों से अलग, मुसोलिनी सामान्य जनमानस की पूरी जीवन शैली को अपने नियंत्रण में लाने का प्रयास कर रहा था। उसने अति–राष्ट्रवाद की वकालत की। फासीवाद के आदर्शों के अनुरूप राज्य के सर्वोच्च स्थान को उसने अपना पथ–प्रदर्शक बनाया और उसी पर चलता रहा। मुसोलिनी कहा करता था कि राज्य के बाहर कुछ नहीं, राज्य के विरुद्ध कुछ नहीं। उसने यह भी कहा कि–

My programme is action and not talk

मुसोलिनी के इन विचारों और उन पर अमल ने यूरोप में द्वितीय महायुद्ध की तैयारियों को तीव्र से तीव्रतम किया। मगर इकबाल इस नज़्म की सीमा तक मुसोलिनी को नहीं पहचान सके और इटली वासियों को उसके इशारे पर सक्रिय होने की प्रेरणा देने लगे। यह बात भी कम रुचिकर नहीं इकबाल ने जिस "रोम–तुल कुबरा" (महान रोम) का यहां वर्णन किया है, वहां मध्यकाल में पूरी दुनिया से लाकर जमा किए गए दासों की संख्या, रोम के मूल निवासियों से अधिक थी। शायद ये भी उसकी महानता का एक कारण था!

18 अगस्त 1935 को इकबाल ने "अबीसीनिया" शीर्षक से एक नज़्म कही। अफ्रीका महादेश का यह पिछड़ा देश, अब दुनिया के मानचित्र पर इथोपिया के नाम से दिखाई देता है। 19वीं सदी के अंत में अबीसीनिया ने यूरोपीय राजनीति में भूकंप ला दिया। 1896 में कबीलाई जीवन बिता रहे अबीसीनिया ने उद्योग और तकनीकी में पहचान रखने वाले इटली को एडोबा के युद्ध में हरा दिया। किसी अफ्रीकी देश से यूरोप का कोई देश हार जाएगा, यह बात उस समय तक कल्पना में भी नहीं आती थी। इस युद्ध की एक विशेषता यह भी रही कि अबीसीनिया ने इटली में बने हथियारों से ही इटली को पराजित किया था। यह हथियार उसने फ्रांसीसी व्यापारियों से खरीदे थे।

इटली इस हार को भूल नहीं सका। 1935 में उसने अबीसीनिया पर दोबारा आक्रमण किया। बाजी इटली के हाथ रही। विजेता इटली के जूतों तले अबीसीनिया को किस बेदर्दी से रौंदा गया, इसका एक दृश्य "अबीसीनिया" नज़्म की पहली तीन पंक्तियों के समूह में देखिए:

यूरोप के करगसों(38) को नहीं है अभी खबर
है कितनी जहरनाक(39) अबीसीनिया की लाश
होने को है यह मुर्दा ए दैरीना(40) क़ाश(41) क़ाश

यहां यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि यह सब कुछ मुसोलिनी के नेतृत्व में हुआ था। इकबाल भी इससे परिचित थे और इस नज़्म के अंत में इस तरह कहते हैं:

ऐ वाए आबरू ए कलीसा(42) का आईना
रोमा ने कर दिया सरे बाजार पाश(43) पाश

"अबीसीनिया" नज़्म इकबाल की संवेदना और मानवता को जिस तरह पेश करती है, उससे पाठक का प्रभावित होना स्वाभाविक है। मगर चौथे दिन ही इकबाल का रंग ढंग कुछ और दिखाई देने लगता है।

22 अगस्त 1935 को इकबाल ने "मुसोलिनी" शीर्षक से एक दूसरी नज़्म कही जो "ज़र्ब ए कलीम" में शामिल है। इकबाल केवल चार दिन पहले (18 अगस्त 1935) अबीसीनिया के हाल पर आँसू बहाते हुए रोम को बुरा भला कह रहे थे। मगर इतने कम समय में पता नहीं इकबाल के सामने कौन सी मजबूरी आ गई कि वह मुसोलिनी के पूर्वी (तत्कालीन सोवियत संघ) और पश्चिमी (ब्रिटेन और अमेरिका) प्रतिद्वंद्वियों से कह उठे:

क्या ज़माने से निराला है मुसोलिनी का जुर्म
बे महल(44) बिगड़ा है मासूमान ए यूरोप(45) का मिज़ाज

मेरे सौदा ए मलूकिअत(46) को ठुकराते हो तुम
तुमने क्या तोड़े नहीं कमजोर क़ौमों के जुजाज(47)

अबीसीनिया पर विजय के बाद यूरोप में मची हाय तौबा के विरुद्ध मुसोलिनी का ये जवाब (इकबाल के शब्दों में) है। कभी अबीसीनिया के हालात से दुखी होने वाले लोगों में इकबाल भी थे। मगर आगे चलकर उन्होंने पूरब और पश्चिम पर आरोप–प्रत्यारोप के बहाने मुसोलिनी का समर्थन कर दिया और वह उसके आक्रमण का तर्क भी ढूंढ लाए। इकबाल पुनः एक बार जूलियस सीजर का नाम लेकर रोम के शानदार अतीत की याद ताजा करते हैं। वह कहते हैं–

आल ए सीजर(48)चोब ए नै(49)की आबयारी(50)में रहे
और तुम दुनिया के बंजर भी न छोड़ो बे खेराज(51)

यूरोप के देश, अगर उस समय तक पूरी दुनिया में लूट खसोट का बाजार गर्म किए हुए थे तो इसके कारण साम्राज्यवाद के मैदान के नए खिलाड़ी इटली की लूट को न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता। इकबाल का इटली के प्रति ये दृष्टिकोण तो किसी तरह युक्तिसंगत नहीं है।

इस नज़्म के अंत में एक विचित्र स्थिति वहां उत्पन्न हो जाती है जब इकबाल यूरोपीय लूट को छंदबद्ध करते–करते समाजवाद और फासीवाद की सीमाओं को मिला देते हैं। शेर देखिए–

तुमने लूटा बे नवा सेहरा नशीनों(52) के ख़य्याम(53)
तुमने लूटी क़िश्त ए देहक़ॉ(54)! तुमने लूटे तख़्त व ताज(55)

क्या मुसोलिनी के मुंह से "बे नवा सेहरा नशीनों" (मरुस्थलों में रहने वाले लाचार लोग) और "क़श्ति ए देहक़ॉ" (किसानों के खेत) की लूट की बातें उचित प्रतीत होती हैं? क्या मुसोलिनी कभी उन लाचार लोगों के समर्थन में खड़ा था? इकबाल, मुसोलिनी के अनुचित समर्थन के जोश में घटनाओं और विचारों के संसोधन से अलग हो जाते हैं। इकबाल के संबंध में किसी प्रकार यह नहीं कहा जा सकता कि वह राजनीति की बारीकियों से अपरिचित थे। इकबाल की त्रासदी ये है कि वह फ़ासीवादियों की वीर पूजा (Hero Worship) से प्रभावित थे। इसके अनुसार सभी प्रकार के अच्छे कार्यों का जिम्मेदार एक व्यक्ति होता है। इकबाल ने पहले इटली के आक्रमण को उचित कहा, फिर "आल ए सीजर" (जूलियस सीज़र की संतान) यानी मुसोलिनी के कार्यों का सकारात्मक कारण प्रस्तुत कर दिया:

पर्दा ए तहज़ीब(56)में ग़ारत गरी(57)आदम कुशी(58)
कल रवा(59) रखी थी तुमने, मैं रवा रखता हूं आज

इकबाल की काव्य रचनाओं में राजनीतिक विचारों का यह अध्ययन अभी अपूर्ण है। इकबाल की राजनीति से संबंधित कई बातों पर अभी बिल्कुल चर्चा नहीं हुई है। मगर जो बातें ऊपर विभिन्न हिस्सों में कही गई हैं, उनसे यह अनुमान लगाना कठिन नहीं कि समाजवाद, इकबाल के लिए प्रिय विचार नहीं, लोकतंत्र भी कुछ बेहतर और भरोसेमंद शासन पद्धति नहीं, इन सबसे दुखी इकबाल के लिए संतुष्टि के कुछ अंश फासीवाद अवश्य उपलब्ध कराता है। उपर्युक्त रचनाओं के अध्ययन से यह बात भी स्पष्ट होती है कि इकबाल, किसी स्थाई राजनीतिक मार्ग की खोज में विफल रहे और अधिकांशतः कोई क्षणिक घटनाक्रम अथवा विचार उनकी कलम को गतिशील कर देता था जो शेर के रूप में ढलकर हमारे सामने मौजूद हैं। अगर ऐसी बात नहीं होती तो इस तरह से अत्यंत कम–कम अंतराल में उनके विचार परिवर्तित नहीं होते।

---

(1) निर्माण का सौंदर्य (2) सफाई (3) इमारत का बहुवचन, बहुत सारी इमारतें (4) दर्शनशास्त्र (5) दूर दर्शिता (6) शासन (7) समानता की शिक्षा (8) राष्ट्र (9) आसमानी, ईश्वर प्रदत्त , लाभ (10) अछूता (11) कमाल का बहुवचन, चमत्कार (12) बिजली और भाप (13) पूंजीवाद (14) कश्ती, नाव (15) जादू का खेल, धोखा (16) प्रदर्शनी (17) अर्थशास्त्र के जानकार / विद्वान (18) झुकी हुई रेखाएँ (19) किसी चीज को टेढ़ा रखना मगर गिरने न देना (20) चाल, चलने का ढंग (21) लाभ रहित (22) तीव्र गति (23) क्रांति की उमंग (24) पुरानी दुनिया, वृद्ध हो चुकी दुनिया (25) प्रकटीकरण (26) पूरब की आत्मा, प्राच्य जीवन दर्शन (27) स्वाभिमान (28) हकदार, अधिकार पूर्ण (29) फांसी और रस्सी (30) शासन पद्धति (31) मर्ज़ – बीमारी (32) कारण (33) अनुसरण (34) लोकतांत्रिक शासन प्रणाली (35) महान रोम (36) दीन हीन (37) स्वाभिमान (38) गिद्ध (39) विषैला (40) पुरानी लाश (41) फाँक, टुकड़ा (42) चर्च की प्रतिष्ठा (43) चूर (44) असमय, बे अवसर (45) यूरोप के मासूम जन (46) साम्राज्यवाद की दीवानगी (47) आईना, शीशा (48) सीजर, जूलियस सीजर, की संतान (49) नरकल की छड़ी (50) सिंचाई, यहां "निगरानी / नियंत्रण" के अर्थ में प्रयुक्त (51) कर मुक्त (52) रेगिस्तान अथवा निर्जन प्रदेशों में रहने वाले लाचार लोग (53) खेमा बनाने वाला (54) किसानों के खेत (55) सिंहासन और राजमुकुट (56) संस्कृति की आड / पृष्ठभूमि (57) लूट खसोट (58) नरसंहार (59) जायज, उचित

अहिंसक शिक्षा-व्यवस्था

शिक्षा से प्रतिस्पर्धा को हटाना होगा। प्रेम को बढ़ाना होगा। अपने हिस्से की जीत पर काम करना होगा, दूसरे के हिस्से की जीत को स्वीकार करना होगा। अब शिक्षा को सिर्फ रोजगारपरक से अलग पुनः नैतिकता परक बनाना होगा।

डॉ॰ रीता सिंह
विभागाध्यक्ष, बी.एड.विभाग
ए.एन.कॉलेज, पटना

शिक्षा व्यवस्था में हिंसा को स्थान मिलना चाहिए अथवा नहीं, यह आधुनिक शिक्षा का अहम सवाल है। प्राचीन भारतीय शिक्षा में हिंसा को विशेष स्थान प्राप्त था। "वैदिकी हिंसा, हिंसा ना भवति"। यह वैदिक परंपरा में हिंसा के समर्थन का वाक्य है। यहां हिंसा असुरों की समाप्ति को लेकर है। सुर–असुर की कल्पना और असुरों की समाप्ति की शिक्षा भारतीय शिक्षा का अंग रहा है। इस हिंसा की शिक्षा के खिलाफ लगातार भारत में जैन, बौद्ध आदि नई अहिंसक शिक्षा व्यवस्था आती रही। सोचकर कष्ट होगा, पर सत्य है, आज अधिकांश मानव मन हिंसात्मक हो गया है। कैसे?

आज मानव का प्रारम्भ प्रतिस्पर्धा से है। वह अंतहीन सफलता प्राप्ति की प्रतिस्पर्धा में लगा है। तीन साल का बच्चा अपने ही उम्र के बच्चे से जीत को छीनना चाह रहा है। अंतर समझिएगा, उसे जीतने के लिए तैयार नहीं किया जाता है बल्कि सामने वाले को हराने के लिए तैयार किया जाता है। उसे प्रतिस्पर्धा में डाला जाता है। ''प्रतिस्पर्धा'' की व्याख्या करें तो ....

''प्रतिस्पर्धा'' यानी वह स्थिति जिसमें दो या अधिक व्यक्ति एक दूसरे से किसी काम में आगे निकलने के लिए प्रयत्नशील तथा कटिबद्ध है। प्रतिस्पर्धा छिनने का प्रशिक्षण है। नौकरी, पद, प्रतिष्ठा, सम्मान सब अपने ही साथ वाले से छीनना है। यह प्रतिस्पर्धा, मन को हिंसात्मक बनाती है।यही हिंसात्मक मन सबकुछ पा लेने के लिए हिंसात्मक रोजगारपरक शिक्षा व्यवस्था, अर्थव्यवस्था में प्रवेश करती है। रोजगारपरक

शिक्षा व्यवस्था अर्थात गलाकाट व्यापारिक प्रतिस्पर्धा। इस अर्थ–व्यवस्था में पैसा, भौतिक सुख–सुविधा और व्यक्तिगत स्वार्थ केंद्र में है। अपनी जरूरतों के आगे कुछ भी नहीं है और इन जरूरतों की पूर्ति में दूसरे को समाप्त कर देने की होड़ प्रबल है। यही आसुरी प्रवृति है। यही हिंसात्मक मन है। यही हिंसात्मक शिक्षा व्यवस्था है।

इस हिंसात्मक व्यवस्था ने सारे मानवीय संबंधों को तार–तार कर दिया है। बुजुर्ग कराह रहे हैं। महिलाएं रौंदी जा रही हैं। गरीब और गरीब हो रहे हैं। चारों ओर हिंसा का हाहाकार मचा है। इसी हिंसात्मक व्यवस्था के प्रति गांधी ने सचेत किया था और बुनियादी शिक्षा के साथ अहिंसात्मक अर्थ–व्यवस्था की बात कही थी। उनकी परिकल्पना थी।'' शिक्षा से मेरा अभिप्राय यह है कि बालक की या प्रौढ़ की शरीर, मन तथा आत्मा की उत्तम क्षमताओं का सर्वांगीण विकास किया जाय और उन्हें प्रकाश में लाया जाय। अक्षर–ज्ञान न तो शिक्षा का अंतिम लक्ष्य है और न उसका आरम्भ है। वह तो मनुष्य की शिक्षा के कई साधनों में से केवल एक साधन है। अक्षर–ज्ञान अपने–आप में शिक्षा नहीं है। इसलिए मैं बच्चे की शिक्षा का श्रीगणेश उसे कोई दस्तकारी सिखाकर और जिस क्षण से वह अपनी शिक्षा का आरंभ करे उसी क्षण से उसे उत्पादन के योग्य बनाकर करूंगा। इस प्रकार प्रत्येक स्कूल आत्मनिर्भर हो सकता है। शर्त सिर्फ यह है कि इन स्कूलों की बनी चीजें राज्य खरीद लिया करे।'' गांधी स्पष्ट करते हैं कि शिक्षा का प्रारम्भ रोजगार से होना ही सुदृढ अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी है। जब रोजगार ही अर्थव्यवस्था की नींव है तब यह अहिंसक अर्थव्यवस्था का मतलब? यही समझना सबसे दुरूह कार्य है। सरल शब्दों में तो कह दिया गया है, अहिंसक अर्थव्यवस्था, मतलब जीवन जीने की मूलभूत आवश्यकता के अनुरूप उत्पादन, अर्जन और वितरण। गाँधीजी के इस दर्शन और शिक्षा को रोजगार से जोड़ने के दर्शन दोनों को मिलाना होगा। तब अहिंसक शिक्षा–व्यवस्था और अहिंसक अर्थव्यवस्था के स्वरूप और जरूरत को समझा जा सकेगा। शिक्षा की नैतिकता और हर हाथ को रोजगार के सिद्धांत को मिलाकर अहिंसक अर्थ–व्यवस्था की नींव रखी जाती है। शिक्षा की नैतिकता अर्थात मानवीय धर्म और हर हाथ रोजगार ।

हिंसक अर्थ व्यवस्था के नींव पर निर्मित आज के हिंसात्मक समाज की परिकल्पना शायद बापू को थी इसलिए समय रहते बापू सभी में अहिंसक अर्थ–व्यवस्था के सुप्त बीज को जगा डालना चाहते थे ताकि भविष्य की नई पीढ़ी हिंसा की आग में ना झुलसे। उनका विश्वास था कि अहिंसक अर्थ–व्यवस्था न केवल गरीबी को परास्त करेगी, बल्कि अहिंसक व्यक्तित्व को महान बनाकर अन्य मनुष्यों के साथ एकता के सूत्र में बांधेगी। एक बड़ा सवाल यह भी है कि यदि हिंसा या युद्ध ही समस्या का समाधान है तो हर युद्ध की समाप्ति शांति वार्ता से ही क्यों होती है? अंततः युद्ध को विराम ही क्यों देना पड़ता है? युद्ध का विकल्प शांति ही क्यों है? जब शांति या अहिंसा की स्थापना ही अंतिम सत्य है तो अहिंसा का प्रशिक्षण प्राप्त कर अहिंसक अर्थ–व्यवस्था की स्थापना मुश्किल क्यों है? अहिंसा की स्थापना होनी ही है तो हिंसा से पहले हो। हिंसा के आधार पर कोई वस्तु निर्मित नहीं की जा सकती है। हिंसा के विध्वंस के बाद की अहिंसा से लाभ क्या? वास्तव में मानव के लिए आर्थिक विकास की अनिवार्यता को देखा जाए तो यह उसमें नैतिकता की स्थापना के लिए, मानवीय संबंधों के निर्वहन के लिए, उससे प्राप्त सन्तुष्टि के लिए और जनकल्याण के लिए है। दूसरे शब्दों में कहें तो शांति, प्रेम, मानवता, भाईचारा की स्थापना के लिए ही विकास की जरूरत है, शिक्षा, ज्ञान और विवेक की जरूरत है। इस तरह देखें तो अहिंसा के सिद्धांत और विकास का परस्पर संबंध है। मानव अपना विकास, प्रेमपूर्ण अहिंसात्मक जीवन यापन के लिए चाहता है। पर विकास के

अन्धदौड में इसके विपरीत परिणाम प्राप्त कर लेता है। प्रेम और अहिंसा की खोज प्रतिस्पर्धा और हिंसा पर आकर ठहरती है।

गांधी इस समस्या का अध्ययन कर इसके जड़ में गए थे। उन्होंने देखा कि भोजन, कपड़ा जैसे मूलभूत उत्पादन का केंद्र गांव है, जिसे नजरअंदाज किया जा रहा है। उन्होंने देखा कि उत्पादक वर्ग सिमट रहे हैं। पूंजी के असमान वितरण से बेरोजगारी, निर्धनता बढ़ रही है। औद्योगिकीकरण से ग्रामीण भारत समाप्त हो रहा है। आय बढ़ाने की चाह में व्यक्ति व्यक्ति से दूर हो रहा है। शहरीकरण और भौतिक संसाधन के उपभोग की बढ़ती प्रवृति से मानवीय संबंध समाप्त हो रहे हैं। परिवार टूट रहा है। उन्होंने समझा कि इस परिस्थिति से छुटकारा सिर्फ और सिर्फ अहिंसक अर्थ व्यवस्था की स्थापना से संभव है। उन्होंने बुनियादी शिक्षा के साथ अहिंसात्मक अर्थव्यवस्था की बात कही। आज गुलामी की अर्थव्यवस्था चल रही है। अर्थ कुछ हाथों में सिमटा है। आम जनता उनकी गुलामी में अर्थोपार्जन करते हैं। यह गुलामी भी अपने साथी के साथ प्रतिस्पर्धा कर उनसे छीननी पड़ती है। मुश्किल से मिले इस गुलामी से जो आर्थिक कमाई होती है, उसे भौतिक संसाधनों, मंहगी शिक्षा के नाम पर पुनः उन्हें ही लौटा देते हैं। नौकरी और बाजार की इस हिंसात्मक अर्थव्यवस्था के कुचक्र को हम समझ ही नहीं पा रहे हैं।

आज हम अच्छी शिक्षा की मांग सरकार से नहीं करते। डोनेशन की धनराशि को जमा करने के लिए नैतिक–अनैतिक कार्य करते हैं। प्राइवेट शिक्षा व्यस्था में बच्चे को मशीन बनने के लिए धकेल देते हैं। एक अनजान प्रतिस्पर्धा के हिंसात्मक मकड़जाल में अपने हाथों से अपने बच्चे को उलझा आते हैं। वह तनाव में आत्महत्या करता है। वह तनाव में प्रेम करता है। वह तनाव में भागता है। वह तनाव में आपकी ही तरह कहीं गुलाम बन जाता है। वह तनाव में आपको छोड़ता है और अपने शिशु को उसी मकड़जाल में डालने की जद्दोजहद में लग जाता है। वह अपने संबंधों की हिंसा करता जाता है। अपने शिशु को भी इसी हिंसा के लिए प्रेरित करता है। छह महीने में 28 हजार लड़कियों का बलात्कार इसी हिंसात्मक अर्थव्यवस्था का परिणाम है। लगातार आत्महत्या,बाढ़, सुखाड़, प्राकृतिक आपदा सभी इसी व्यवस्था की देन है क्योंकि यह व्यवस्था व्यक्ति को व्यक्तिवादी बनाता है जबकि मानव एक सामाजिक प्राणी है। अपनी मूल सामाजिक प्रवृति से अलग करने वाली अर्थव्यवस्था उन्हें महंगे फ्लैट, गाड़ी, टीवी, सोफा, बीयर–बाड़ में कैद कर देती है। आज व्यक्ति किसी समारोह में व्यक्ति से नहीं मिलता है। समारोह की साज–सज्जा, उपस्थित व्यक्ति की पोशाक, गहने, गाड़ी से मिलता है। व्यक्ति फिर से सामाजिक प्राणी बने। व्यक्ति, व्यक्ति से मिलने को उद्धत हो, इसके लिए अहिंसा के प्रशिक्षण की ओर कदम बढ़ाना होगा। यह प्रशिक्षण मानववादी आर्थिक विकास के सिद्धांत के द्वारा ही सम्भव है। सत्य और अहिंसा इस सिद्धांत की कसौटी है। गांधी की परिकल्पना का मानव आर्थिक रूप से सम्पन्न संपूर्ण मानव है। वह बेहतर उत्पादक भी है, बेहतर उपभोक्ता भी है और बेहतर वितरक भी है। वह समाज के लिए आय–अर्जन करता है। वह अपने बच्चों का निर्माण समाज के लिए करता है। वह गांव को शहर से जोड़ता है। वह सीमित संसाधन में मूल्यवान जीवन जीता है। वह अपने बच्चों को ज्ञानवान बनाता है। चरित्रवान बनाता है। मशीन और मानव के बीच के अंतर को समझता है। वह उद्योग के मशीन में मानवता के गुण भर देता है। मानव को मशीन बनने से बचाता है। गांधी का अर्थशास्त्र जीवन को परिपूर्ण बनाता है। इस अहिंसक अर्थशास्त्र की व्यवस्था है – संयमपूर्ण जीवन, आवश्यकतानुसार उत्पादन, धन का समान वितरण, आय का संयम, समरसता की स्थापना, सामाजिक सौहार्द की स्थापना, बुनियादी शिक्षा से हर हाथ कार्य की तैयारी, उत्पादन में सभी की सहभागिता, उचित मूल्य के साथ वितरण,

ग्रामीण भारत और शहरी भारत में अंतर्संबंध का निर्माण, बाजार का विकेंद्रीकरण, देशी उत्पादन को बढ़ावा और संरक्षण, सहकारी सहायता स्व–अर्जन के लिए। अब समय आ गया है कि बाजार की हिंसा में जकड़ते जा रहे बच्चों के लिए हम स्वयं खड़े हों। स्वयं अपने बच्चों को अहिंसा का प्रशिक्षण दें। हमेशा याद रखें, विकास का एकमात्र रास्ता अहिंसक शिक्षा–व्यवस्था और अर्थ–व्यवस्था है। स्वयं की व्यवस्था को अहिंसक बनाना होगा।

अन्यथा, शिक्षा के उच्चतम स्थान पर बैठे सिवान के जज महोदय की तरह मूढ़ भविष्य हमें मिलेगा। ताजा घटना है, सभी को याद ही होगा। 9 मई, 2021 की भास्कर की खबर है....

सीवान शहर के डायट परिसर में चल रहे डेडिकेटेड कोविड हेल्थ सेंटर में शुक्रवार की रात एडीजे–छह जीवन लाल के 70 वर्षीय पिता ब्रह्मदेव की मौत हो गयी. स्वास्थ्य विभाग के अधिकारियों ने रात में ही इसकी सूचना जज साहब को दी। स्वास्थ्य विभाग के अधिकारियों ने बताया कि जज साहब ने कहा कि डेड बॉडी हम अपने यहाँ नहीं लायेंगे। पूरा परिवार संक्रमित हो जायेगा। आप अपने स्तर से दाह–संस्कार करा दीजिए। करीब 20 घंटे से अधिक समय तक डेड बॉडी अस्पताल में ही पड़ी रही। बाद में जिला प्रशासन के हस्तक्षेप के बाद जज साहब ने अधिवक्ता गणेश राम को पत्र देकर दाह–संस्कार के लिए अधिकृत किया। एसडीओ रामबाबू प्रसाद, नोडल पदाधिकारी डॉ अनिल कुमार सिंह व प्रभारी सीएस डॉ एमआर रंजन की उपस्थिति में शव को दिया गया।

डॉ एमआर रंजन ने बताया कि जज साहब ने मुझे प्रेषित पत्र में अधिवक्ता गणेश राम को डेड बॉडी देने की बात लिखी थी। जिला प्रशासन ने समाजसेवी श्रीनिवास यादव के सहयोग से कंधवारा दहा नदी के तट पर जज साहब के पिताजी का अंतिम संस्कार करवाया। गौरतलब है कि तीन दिन पहले जज साहब के पिताजी का ऑक्सीजन लेबल कम होने पर डीसीएचसी में भर्ती किया गया था। स्वास्थ्य विभाग के पदाधिकारियों ने बताया कि कोई अटेंडेंट नहीं होने से काफी परेशानी हो रही थी। सिविल सर्जन ने कहा कि जज साहब को डेड बॉडी ले जाने के लिए कई बार फोन किया गया, लेकिन उन्होंने फोन रिसीव नहीं किया। उन्होंने बताया कि इसके बाद उन्होंने एक वकील के माध्यम से शव के दाह संस्कार की अनुमति दी। समाजसेवी के माध्यम से अंतिम संस्कार कराया गया।

यदि हम सचेत नहीं हुए तो हमारे मृत शरीर का भी यही हस्र होगा, आश्चर्य नहीं। जज साहब ने उच्चतम शिक्षा पाई। बड़ी प्रतिस्पर्धा कर न्याय की कुर्सी को पाया, पर मानवता की शिक्षा कहीं नहीं ले पाए। हिंसा से भरा मन उनके पिता के प्रति भी असंवेदनशील रहा। मन के इसी अहिंसा को समाप्त करना जरूरी है। शिक्षा में विवेक, प्रेम, मानवता को वरीयता देना आवश्यक है। मानवता को बचाना है, किसानों को मृत्यु से बचाना है, अधनंगे शिशु को संवारना है, भारत को खुशहाल बनाना है तो हमें हिंसात्मक प्रतिस्पर्धा के दौड़ से बाहर निकलकर मानवीय नैतिकता से परिपूर्ण अहिंसक व्यवस्था की स्थापना के मुहिम में जुट जाना होगा। शिक्षा से प्रतिस्पर्धा को हटाना होगा। प्रेम को बढ़ाना होगा। अपने हिस्से की जीत पर काम करना होगा, दूसरे के हिस्से की जीत को स्वीकार करना होगा। अब शिक्षा को सिर्फ रोजगारपरक से अलग पुनः नैतिकता परक बनाना होगा।

मीरा और स्त्री अस्मिता का संघर्ष

मीराबाई का जीवन दु:ख त्याग और प्रतिरोध का पर्याय है। बाल्यकाल में ही माता का निधन, युवावस्था में पति का निधन, विषम परिस्थिति तथा सामाजिक विरोध का उन्हें सामना करना पड़ा। उनके पदों में कठिन जीवन–संघर्ष के अनेक चित्र उपस्थित हैं।

डॉ॰ विम्मी रानी 'क्षमा'
हिन्दी विभाग
ए.एन.कॉलेज, पटना

स्त्री और पुरुष दोनों की उत्पति एक दूसरे के पूरक के रूप में हुई है। इसी विचारधारा के अंतर्गत "अर्धनारीश्वर" की कल्पना की गई है। मानवजाति के आरंभिक काल से ही स्त्रियाँ प्रायः उपेक्षित ही रही हैं। इस कारण नारी अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत रही। वह दमन, शोषण, अत्याचार सहती हुई 'स्त्री जाति' के अस्तित्व को कायम रखने का प्रयास करती रही। आज भी नारी किसी न किसी रूप में शोषण का शिकार है और अपने अस्तित्व की तलाश कर रही है।

स्त्री शोषण का इतिहास बहुत ही पुराना हैं। फ्रांसीसी लेखिका और दार्शनिक सीमोन द बोउवार अपनी पुस्तक में लिखती है "स्त्री पैदा नहीं होती, बल्कि उसे बना दिया जाता है।" यह पुस्तक स्त्री अस्तित्व के विभिन्न दृष्टिकोण को सामने रखती है। इसमें नारी के प्राचीन काल से किए गए संघर्ष एवं जड़ परंपराओं के अंतर्गत किए जाने वाले शोषण तथा अत्याचार की तसवीर दिखती है। स्त्रियों को उनके जीवन के अनेक अधिकारों से वंचित किया जाता रहा है और स्त्रियों का जीवन इसी दमन, शोषण तथा जड़मूल्यो की बलि चढ़ता रहता है।

स्त्री के इन्हीं जड़मूल्यों को चुनौती देती हुई हिन्दी साहित्य के भक्ति काल में प्रतिरोध और संघर्ष की मुखर आवाज बन मीराबाई उपस्थित होती हैं। मीराबाई का जीवन मध्ययुग में ही सीमोन के इस दर्शन को नकारते हुए चुनौती के रूप में स्थित है। मीराबाई ने अपने युगीन किसी भी रूढ़ियों को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने समाज के शोषण तथा थोपी हुई नैतिकता के विरुद्ध आवाज उठाई जो देश काल से परे आज भी सुनाई देती है।

मीराबाई तथा उनके जीवन का परिचय यदि किसी एक शब्द से दिया जा सकता है तो वह शब्द है 'संघर्ष'। मीराबाई मध्यकालीन भक्तिकाल की प्रसिद्ध कवयित्री हैं। भक्तिकाल जो कि हिन्दी साहित्य के इतिहास का स्वर्णयुग है, मीराबाई इस युग में मणि के समान दीप्त होती हैं जिसकी आभा युगों–युगों तक पहुँचती है। मीराबाई का जन्म राजस्थान के कुड़की गाँव में हुआ था । बचपन से ही उनकी प्रवृत्ति भक्ति की ओर रहीं। उन्होंने बाल्य काल में ही श्रीकृष्ण की मूरत को अपने हृदय में स्थान दे

दिया और कृष्ण के प्रति समर्पित रहीं। मीराबाई का विवाह मेवाड़ के सुप्रसिद्ध राजा महाराणा सांगा के पुत्र कुंवर भोजराज के साथ हुआ था। विवाह के पश्चात भी मीरा कृष्ण भक्ति में लीन रहीं। अपने छोटे वैवाहिक जीवन के उपरांत वैधव्य जीवन में मीरा ने कृष्ण के प्रति गहरे अनुराग से भरकर उन्हें अपने जीवन का अवलम्ब बना लिया। वह कृष्ण का प्रेम ही था जिसके सहारे मीरा समाज के जीर्ण–शीर्ण मान्यताओं से टकराती हुई मेवाड़ से अन्ततः द्वारिका तक पहुँचती हैं।

मीराबाई का साध्वी के रूप में बिताया गया जीवन तथा उनका साहित्य, विलक्षण है। मीरा कृष्ण को ही अपना पति मानती है तथा उनके प्रति अनन्य भक्ति तथा प्रेम रखती हैं। मीरा स्वयं कहती हैं–

"मेरो तो गिरधर गोपाल, दूसरों न कोई।
जा के सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई।।
तात मात, भ्रात, बन्धु, अपना नहिं कोई।
छांड दई कुल की कान, क्या करेगा कोई।

———o———

"अंसुबन जल सींचि सींचि प्रेम बेलि बोई।
अब तो बेलि फैल गई, आंनद फल होई।।

मीराबाई का जीवन दुख त्याग और प्रतिरोध का पर्याय है। बाल्यकाल में ही माता का निधन, युवावस्था में पति का निधन, विषम परिस्थिति तथा सामाजिक विरोध का उन्हें सामना करना पड़ा। उनके पदों में कठिन जीवन–संघर्ष के अनेक चित्र उपस्थित हैं। एक स्त्री होने के नाते तत्कालीन मध्यकालीन युग की सामाजिक रूढ़ियों का प्रतिरोध कर अपने बनाएं मार्ग पर चलना सरल नहीं था। उन्होंने ना तो अपने पति के मृत्यु के बाद सती प्रथा जैसी कुरीतियों को अपनाया और ना ही किसी भी प्रतिबंध को स्वीकार किया। इस कारण मीरा को पारिवारिक तथा सामाजिक अनेक विरोधों तथा यातनाओं का सामना करना पड़ा। मीरा अपना दुःख इन पदों के माध्यम से व्यक्त करती हैं –

"पग घुंघुरू बांध मीरा नाची रे। लोग कहैं मीरा हो गई बावरि,
सास कहैं कुलनासी रे। जहर का प्याला राणाजी ने भेजा,
पीवत मीरा हांसी रे। मैं तो अपने नारायण की,
हो गई आपहि दासी रे। मीरा के प्रभु गिरधर नागर,
वेगि मिलो अविनासी रे।

डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी ने मीरा की कविताओं पर अत्यंत मार्मिक टिप्पणी की है जो उनकी पुस्तक "मीरा का काव्य" के आरंभ में प्राक्कथन में उद्धृत है **"मीराबाई की कविता भी भक्ति आंदोलन, उसकी विचारधारा और तत्कालीन समाज में नारी स्थिति से उनकी टकराहट का प्रतिफल है। यह प्रतिफलन उस मानवीयता में प्रकट हुआ जो अपने समय की धार्मिक साधनाओं के ही सहारे रुपायित हो सकती थी।"**

इस प्रकार मीराबाई ने अपने विरह की उध्वर्गामी स्थिति को ही अपने जीवन का रूप दे, कृष्ण के प्रेम का आलंबन स्वीकार कर लिया । वह अपने और कृष्ण का सम्बंध जन्म–जन्मांतर का मानती है। और इस बंधन को अटूट कहती है। मीरा कहती है–

"माई मैं तो लियो रमौयो मोल।
कोई कहे छानी, कोई कहे चोरी, लियो है बजंता ढ़ोल।
कोई कहे करो, कोई कहे गोरो, लियो है मैं आँखी खोल।
कोई कहे हल्का, कोई कहे भारी, लियो है तराजू तोल।
ननका गहना मैं सब कुछ दीन्हा, दियो है बाजूबंद खोल।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, पुरब जन्म का है कोल।।

मीराबाई कृष्ण की भक्ति और तत्कालीन मध्ययुगीन परिस्थिति में नारी के लिए एक ऐसे जीवन को चुनती है जो कि उस युग के लिए एक क्रांतिकारी चेतना थी। 'स्त्री–जीवन' मध्ययुग में दमन और अत्याचार की पराकाष्ठा थी। ऐसी स्थिति में भी मीरा अपने अस्तित्व को नकारती नहीं हैं बल्कि एक चुनौती बन समाज के अमानवीय मूल्यों का खंडन करती हुई कृष्ण के प्रेम मार्ग पर आगे बढ़ती जाती हैं। प्रेम और प्रतिरोध को एक साथ मीरा के काव्य में देखा जा सकता है। उन्होंने अपनी रचनाओं में बहुत साफ कहा है कि सारे सांसारिक संबंध झूठे है। जीवन का एक मात्र सत्य श्रीकृष्ण की भक्ति है। कृष्ण ही मीरा के जन्म–जन्मान्तर के मित्र, हितैषी एवं प्रिय है। इसलिए मीरा कृष्ण के प्रेम में खोई रहती है। मीरा के पद कृष्ण के प्रति उनके प्रेम की अभिव्यक्ति है–

सिरी गिरधर आगे नाचूँगी ।
नाचि नाचि पिव रसिक रिझाऊँ, प्रेमी जन कूँ जाचूँगी।।
प्रेम प्रीति की बाँधि घुँघरू, सुरत की कछनी काछूँगी ।
लोक लाज कुल की मरजादा, या में एक न राखूँगी ।।
पिव के पलंगा जा पौढूँगी, मीरा हरि रंग रॉचूँगी ।।

आज के इस आधुनिक दौर में स्त्रियाँ समाज के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी बुद्धिमत्ता, अपना कौशल तथा नेतृत्व का परिचय दे रही हैं। स्त्रियाँ समाज कि कई रूढ़ियों को तोड़ अपने वजूद की रक्षा के लिए संघर्षरत तथा प्रयासरत हैं परंतु अनेक समस्याएं और चुनौतियाँ उनका पीछा कर रही हैं। इतनी विषमताओं के बाद भी समाज में स्त्री शक्ति रूपी चिंगारी कहीं न कही ,किसी न किसी स्त्री के अंदर दिख ही जाती हैं।

1907ई॰ में एक ऐसी लेखिका का जन्म होता है जिनकी रचनाओं में मीराबाई की ही तरह प्रेम, वियोग,करुणा तथा मानवता के प्रति संवेदनशीलता दिखाई देती है। प्रेम, करुणा, रहस्यवादिता और चेतनशीलता के कारण ही छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा को "आधुनिक मीरा" भी कहा जाता है।

महादेवी वर्मा और मीराबाई में अनेक समानता है, जो उनके व्यक्तित्व तथा काव्यों में दृष्टिगोचर होता है। मीराबाई में कृष्ण के मूर्त रूप के प्रति प्रेम दिखाई देता है परन्तु महादेवी वर्मा के यहाँ यह प्रेम अमूर्त्त और रहस्यमयी है। मीराबाई कृष्ण के प्रति अपना अनुराग प्रकट करती है परन्तु महादेवी अज्ञात प्रियतम के प्रति

अनुराग भाव रखती है तथा मिलन की आकांक्षी है। जिस प्रकार मीरा कहती है–

"दरसन बिन दूखण लागे नैन। जब के तुम बिछरे प्रभु मोरे।
कबहु न पायो चैन। सबद मुक्त मेरी छतियाँ काँपे।
मीठे–मीठे बैन। विरह–कथा कासूं कहूँ सजनी
बह गई करवत ऐन ।।"

मीराबाई की रचनाओं में जिस प्रकार श्रीकृष्ण के प्रति विरह तथा प्रेम की गहन अनुभूति प्रकट होती है। उसी प्रकार महादेवी वर्मा के यहाँ भी प्रेम तथा विरह की अनुभूति होती है जो अज्ञात प्रियतम एवं रहस्यवाद की ओर अग्रसर होती है।

महादेवी अपने काव्य में अपने निजी जीवन और जगत से उपलब्ध सुख–दुख ,हर्ष–शोक, आंनद–करूणा को विरह के रूप में व्यक्त करती हुई कहती हैं–

"नैनों में आंसू है, और हृदय में सिहरन है
पुलक–पुलक उर सिहर–सिहर तन, आज नयन आते क्यों भर–भर।"

विरह की एक और गीत में महादेवी अपनी सखियों को अपनी विरह–दशा प्रकट करती हुई कहती हैं–

"अली कैसे उनको पाऊं? वे आंसू बन कर मेरे
इस कारण ढुल–ढुल जाते, इन पलकों के बंध में
मैं बांध–बांध पछताऊँ ।"

स्त्रियों की यह संघर्ष गाथा निरंतर आगे बढ़ती जाती है। मीराबाई से चलती हुई यह परम्परा अपनी विरासतें सहेजती संवारती समकालीन युग में स्त्रियों को चेतन सम्पन्न बना रही है। इस प्ररम्परा में एक और नाम जुड़ता है वह है–अनामिका। अनामिका का काव्य स्त्री अस्मिता ,उसके दिन प्रतिदिन के संघर्ष एवं उसकी मानसिक चेतना की अभिव्यक्ति का काव्य है। अनामिका की कविताएं एक साधरण स्त्री जो कि अपने घर परिवार की महत्वाकांक्षा की कसौटी पर नाचती रहती है उसकी अनकही पीड़ा की अनुभूति कराती है। अनामिका अपनी कविता ''स्त्री'' में कहती हैं–

"सुनो, हमें अनहद की तरह और समझो जैसे समझी जाती है
नई–नई सीखी हुई भाषा ।

अनामिका समाज में हो रहे स्त्रियों के मानसिक तथा शारीरिक शोषण के विरुद्ध आवाज उठाती हैं, इस दमन चक्र को अस्वीकार करती हुई चेतना तथा जागृति की बात करती है। स्त्रियां परिवार, समाज तथा देश के समुचित विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। उनको उनका श्रेय देना, सम्मान प्रदान करना तथा उनकी भावनाओं का कद्र करना एक नैतिक जिम्मेदारी के साथ–साथ मानवता के दृष्टिकोण से भी आवश्यक है। परंतु स्थिति इतनी विकट है कि स्त्री की पीड़ा तथा उसकी वजूद की उपेक्षा होती ही रहती है।

अनामिका अपनी कविताओं के माध्यम से समाज में स्त्रियों के विरुद्ध बनाये गए परम्पराएँ रीति रिवाजों तथा मापदंडों का विरोध करतीं हैं। यह विरोध का संघर्ष जो मीराबाई से चलती है वह अनामिका तक पहुँच जाती हैं। भले ही समाज तथा युग में परिवर्तन हो गया हो, ना जाने कितनी ही पीढ़ियों का सफर रहा हो परन्तु स्त्रियों के लिए जीवन की स्थिति आज भी संघर्षमयी बनी हुई है। स्त्रियों का अस्तित्व पुरुष एवं समाज की करुणा, दया एवं उपकार का पात्र बन कर रह गया है। अपनी बहुचर्चित कविता "बेजगह" में अनामिका स्त्री अस्तित्व के संघर्ष एवं समाज के दोहरे चेहरे को बेनकाब करती हैं–

"याद था हमें एक–एक क्षण आरंभिक पाठों का–
राम, पाठशाला जा !
राधा, खाना पका !
राम आ बताशा खा !
राधा, झाड़ू लगा ।
भैया अब सोएगा ।
जाकर बिस्तर बिछा !
अहा, नया घर है !
राम, देख यह तेरा कमरा है !
'और मेरा ?
'ओ पगली,
लड़कियां हवा, धूप, मिट्टी होती हैं
उनका कोई घर नहीं होता ।"

इन पक्तियों के माध्यम से देखा जा सकता है कि स्त्रियों के लिए घर तथा समाज में अपने अस्तित्व को कायम रखने का संघर्ष कितना व्यापक है। ना जाने कितने त्याग और तपस्या के बाद भी उन्हें नाकार दिया जाता हैं। स्त्री अपनी अस्मिता के लिए संघर्षरत है और उनका यह संघर्ष विभिन्न स्तरों पर जारी है। यह तब तक चलता ही रहेगा जब तक स्त्रियों को उनका अधिकार एवं सम्मान पूर्णतः प्राप्त नहीं हो जाता। मीराबाई हो या अनामिका कोई न कोई स्त्री इस मशाल की लौ को जलाती रहेंगी। जिस स्त्री को प्रकृति ने 'शक्ति' का स्वरूप दिया है वह इतनी कमजोर नहीं है जिसे कोई मिटा सके । बस जरूरत है शिक्षा, आत्मनिर्भरता एवं स्वयं को पहचानने की । स्त्रियों का भविष्य उज्ज्वल है और वह समय दूर नहीं जब स्त्रियां पूर्ण रूप से आत्मनिर्भर हो कर अपनी पहचान बना सकेंगीं। वह एक स्वतंत्र मनुष्य की तरह अपने सपनों के पंख फैला कर इस नीले गगन में उड़ सकेंगी।

समकालीन कवयित्री सविता सिंह अपनी कविता "मैं किसकी औरत हूँ" में अपराजिता स्त्री की भूमिका रखती हैं–

"मैं किसी की औरत नहीं हूं,
मैं अपनी औरत हूँ,
मैं अपना खाती हूँ,
जब जी चाहता है तब खाती हूँ
मैं किसी की मार नहीं सहती
और मेरा परमेश्वर कोई नहीं।"

आधार ग्रन्थ :
1. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास –रामस्वरूप चतुर्वेदी।
2. स्त्री : उपेक्षिता –डॉ. प्रभा खेतान।
3. मीरा के काव्य –डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी।
4. महादेवी वर्मा की काव्य अनुभूति –डॉ. रेणु दीक्षित।
5. यामा –महादेवी वर्मा (रश्मि)।
6. अनामिका (स्त्री, वेजगह)।
7. सविता सिंह (मैं किसकी औरत हूँ)

जीवन उमंग है

डॉ॰ बिनोद शंकर सिंह
प्रशासनिक भवन
ए.एन.कॉलेज, पटना

जीवन, हरपल
उत्सव है/उत्साह है/उमंग है,

सुख–दु:ख, छाँव–धूप, हर्ष–शोक
सब इसका अलग रंग है।
मिलन–बिछोह,
कभी वाह / कभी ओह,
कभी ऊहापोह,
सब श्वाँसों के हीं संग है,
जीवन, हरपल,
उत्सव है/उत्साह है/उमंग है।

कर्म में अकर्म है,
अकर्म में भी कर्म है,
हार–जीत में 'स्थित',
यहीं सत्–यही कर्म है,
संतोष परमसुख, स्वरूप परमानंद है,
जीवन, हर पल
उत्सव है/उत्साह है/उमंग है।

गति है, लय है,
गीत है, संगीत है,
राग है–द्वेष है,
धर्म इसका प्रीत है,
इसके विविध रूप हैं,
इसका अनेक रंग हैं,
जीवन, हर पल
उत्सव है/उत्साह है/उमंग है।

मृत्यु तय है,
जीवन निर्भय है,
संकट है, संशय है,
बड़ा विकट समय है,
ये समय ही तो है
बीत जायेगा,
हौसला/हिम्मत
फिर जीत जायेगा,
भ्रमर कलियों को देख
मुस्कुरायेगा,
फूलों पर नृत्य कर
फिर गीत गायेगा
खुशी है, खुशबू है,
असीम आनंद है
जीवन, हर पल
उत्सव है/उत्साह है/उमंग है।

बुलंद हौसला

दिव्या श्री
स्नातकोत्तर, हिन्दी विभाग
ए.एन.कॉलेज, पटना

रिश्तों के दरमियान में एक
बीमारी ऐसी आयी
लोगों मे पहले से दूरी थी
इस कोरोना ने और बढ़ाई
छा गया हर तरफ सन्नटा
दूर हुए अपनो से
यह बीमारी न जाने कैसा
सैलाब लाया
न देखा न सुना कभी
कोरोना वायरस तेरी ये हस्ती
बिखर गए कई लोग
तूने कैसी ये नजर लगाई
किसी का परिवार टूटा
किसी की पहचान छूटी
ले लिए कितनों के जान
थम सी जाती है साँस
उस पल को याद कर
छीन लिया तूने लोगो से
उससे उसकी मुस्कुराहट
त्योहार का मौसम आया
कोरोना मौत का मौसम लाया
सम्भल रही जिन्दगी
ऐ कोरोना तेरे साथ ही
तेरे आने से इस वक्त ने
हमें आईना दिखाया
वक्त के दरमियान कुछ रिश्ते बिखर जाते हैं
भरोसा जिनसे हो वही मुकर जाते है
जिंदगी के सफर में अकेले चलना पड़ता है
पहचान न हो तो अपने भी बदल जाते हैं

जीवन के पथरीले रास्ते में
रिश्तों को बदलते देखा है
अपनो को हाथ मे लिए
खंजर छुपा देखा है
बंद कमरे काली रात
बहुत कुछ सिखाती है
अंधेरों में खुद की परछाई भी
साथ छोड़ जाती है
न ख्वाब है ना आरजू
पत्थर भी तो देखो
किस्मत से जुदा हो गए
कुछ राह की ठोकर बने
कुछ देवता हो गए
चाँद सितारों की ख्वाहिश नहीं मगर
देखिए जुगनू भी किस्मत से लापता हो गए
भरी महफिल में खुद की पहचान बनाने
बैठी हूँ
काँटो की राह पर चलकर
मंजिल की आस लगाए बैठी हूँ
वक्त बदला लोग बदले
फिर भी कुछ अरमान लगाए बैठी हूँ
फलों की चिंता नही अब मुझे
बस इम्तिहान देने का मन बनाये बैठी हूँ
हैं पथरीले रास्ते पाँव में बने चाहे छाले
फिर भी चलने का
हौंसले बुलंद बनाये बैठी हूँ
फिर भी हौसले बुलंद बनाये बैठी हूँ।

ढका चेहरा

संध्या श्री
स्नातकोत्तर–3, हिन्दी विभाग
ए.एन.कॉलेज, पटना

सोचती हूँ,
कमी रह गई शायद कुछ
या जितना था
वो काफी नहीं था
नहीं समझ पायी गर मैं
तो समझा दिया होता,
जितना समझ पायी
शायद वो काफी ना था
वैसे भी जीवन को समझना
इतना आसान तो नहीं
जिंदगी एक समझौता ही तो है,
परिवार से, समाज से,
प्यार से, अपने आप से
शिकायत थी तुम्हारी
तुम जताते नहीं प्यार कभी
कभी जमाने को बताते नहीं,
अरे प्यार का इजहार कैसा?
क्या चाहते थे
मोहब्बत की मैं
नुमाईश करती?
काश मेरी आँखों में झाँक पाते
जितना तुम्हें नजर आया,
क्या वो काफी नहीं था।
सोचती हूँ, क्या कमी रह गई,
क्या जितना था, वो काफी नहीं था,
खैर, तुमसे भी शिकायत नहीं
तुम्हारा भी कुसूर नहीं,
तरह–तरह के मास्क से ढका चेहरा
कितना क्या कह पाएगा?
कोई कितना समझ पाएगा?

जायसी का सौन्दर्य वर्णन

प्रिया कुमारी
स्नातकोत्तर–प्रथम, हिन्दी विभाग
ए.एन.कॉलेज, पटना

पद्मावती के रूप सौन्दर्य का वर्णन करते हुए जायसी ने उसे 'पारस' रूप कहा है। इस संदर्भ में शिवसहाय पाठक की यह उक्ति द्रष्टव्य है – ''पारस वह रूप है, जिसके आभास अर्थात् छाया मात्र से निखिल संस्कृति प्रतिभासित है। उसकी प्रतिभासिक स्पर्श–दीप्त से यह जगत रूपवान है।''

जायसी हिन्दी साहित्य के अप्रतिम कवि हैं। जायसी की कवित कौशल एवं सौन्दर्य वर्णन की विलक्षण पद्धति पद्मावत में देखा जा सकता है। जायसी का सूफियाना अंदाज देखते ही बनता हैं। वस्तुतः सूफी साधक सम्पूर्ण जगत में ब्रह्म के सौन्दर्य को ही देखते हैं इसलिए जायसी जब पद्मावती के सौन्दर्य का वर्णन करते हैं तो अपूर्व रूप का सृजन कर देते हैं। जायसी ने अनेक स्थलों पर ब्रह्म के अनन्त और अदृश्य सौन्दर्य की प्रस्तुति भी की है। पद्मावती के रूप सौन्दर्य का वर्णन करते हुए उन्होंने उसे 'पारस' रूप कहा है। इस संदर्भ में शिवसहाय पाठक की यह उक्ति द्रष्टव्य है–''पारस वह रूप है, जिसके आभास अर्थात् छाया मात्र से निखिल संस्कृति प्रतिभासित है। उसकी प्रतिभासिक स्पर्श–दीप्त से यह जगत रूपवान है।''

जायसी ने इस रूपवान जगत के अप्रतिम कृति का विशिष्ट वर्णन किया है। पद्मावती के रूप सौन्दर्य के वर्णन के कुछ विशिष्ट स्थलों का उदाहरण यदि हम दें तो ऐसे अनेक स्थल हमें मिलते हैं जहां जायसी की सौन्दर्य दृष्टि अपने उत्कृष्ट रूप में निखर कर सामने आयी है। यथा–हीरामन द्वारा पद्मावती के नरव–शिरव वर्णन का प्रसंग, रतनसेन और पद्मावती के मिलन का चित्रण, राघव चेतन द्वारा दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन खिलजी से पद्मावती के सौन्दर्य का वर्णन करते समय का चित्रण आदि ऐसे अनेक विशिष्ट स्थल है, जहाँ जायसी ने उल्लसित भाव से पद्मावती के अनुपम सौन्दर्य का वर्णन किया है। पद्मावती के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए उन्होंने उसके विभिन्न अंगो का मनोरम चित्रण प्रस्तुत किया है। यथा–पद्मावती के घुँघराले केश राशि, उस पर सजे मांग का सिन्दुर, ललाट, नयन, अधर, दंत, कपोल, कटि, नाभि, जंघा, पाँव आदि। यहाँ यह उल्लेख्य है कि इन अंगो के चित्रण के साथ–साथ एक अलौकिक सौन्दर्य की सृष्टि जायसी ने कर दिया है जो सहज ही पाठक को अभिभूत कर लेता है। सौन्दर्य वर्णन इस चरमोत्कर्ष तक पहुँचता है कि वह अलौकिक सौन्दर्यानुभूति कराने में भी सफल होता है। प्रसंग वश पद्मावती के सुन्दर दांतों का वर्णन करते हुए जायसी कहते हैं–

'जेही दिन दसन जोति निरमई। बहुतन्ह जोति जोति ओहि मई।।
रबि ससि नखत दीन्हि ओहि जोति। रतन पदारथ मानिक मोती

जहँ जहँ बिहँसि सुभावहि हँसी। तहँ तहँ छिटकि जोति परगसी

जिस दिन पद्मावती के दाँतों का निर्माण विधि ने किया, उसी दिन से उस ज्योति के द्वारा अनेक ज्योतियों का निर्माण हुआ। इन्हीं के द्वारा सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रों आदि को ज्योति प्राप्त हुई। जहाँ–जहाँ और जब–जब वह मुस्कुराई उसकी उस मुस्कुराहट से चारों ओर वह ज्योति छिटककर बिखर गयी और सब ओर प्रतिभासित होने लगी। मान सरोवर भी पद्मावती के रूप को देखकर मोहित हो गया। वह हृदय में कामना रूपी लहरें भरने लगा–

''सरवर रूप बिमोहा, हिय होलोरहि लेई।
पाँव छुवै मुकु पाँवों, एहि मिस लहरहि देई''।।

पद्मावती का सौन्दर्य अद्भुत है, जो अपने कल्पना मात्र से जगत की प्रत्येक वस्तु को सौन्दर्य से मंडित कर देता है। जायसी कहते हैं–

'नयन जो देखा कँवल भा, निरमल नीर सरीर।
हसत जो देखा हंस भा, दसन जोति नग हीर।।

जिसके कमल रूपी नयन है, जिसका शरीर निर्मल जल की तरह है, जिसके हँसने से हंस सा प्रतीत होता है, जिसके दांतों की चमक मानो हीरे और मोतियों के आभूषण हों। जिसके रूप के दर्शन मात्र से सरोवर रूपवान हो गया, जिसके चरणों के स्पर्श मात्र से सरोवर निर्मल हो गया। ऐसे अनेक मार्मिक दृश्यों का चित्रण जायसी ने किया है।

जायसी ने उपमानों का सुंदर वर्णन किया है, जो कि पद्मावती के रूप सौन्दर्य के लिये प्रयुक्त हुए हैं। जैसे– कवि ने 'अधरों' को अमृत से भरा हुआ कहा है और अधरों के सौन्दर्य को देखकर बिम्बाफल भी लज्जित हो जाता है। सौन्दर्य दृष्टि के अन्तर्गत प्राकृतिक सौन्दर्य पर अगर हम चर्चा करें तो कवि जायसी नें उसका भी चित्रण बहुत सहज एवं स्वाभाविक रूप में किया है। यथा–सिंहल द्वीप के राजमहल का सौन्दर्य चित्रण–

''भा निरमल तिन्ह पायन परसे। पाना रूप के दरसे''

◉

''डॉक्टर अनुग्रह नारायण सिंह उन योद्धाओं में रहे हैं जिन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया और उसके बाद देश के निर्माण में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।''

–: डॉ राजेन्द्र प्रसाद

हौसलों की उड़ान

भारत का अंतरिक्ष कार्यक्रम नया नहीं है और हमारी सफलताएँ तथा विफलताएँ भी कार्यक्रम के साथ आगे बढ़ती रहती हैं। विज्ञान न केवल आसमान में नयी संभावनाएँ तलाशने के साथ ही अंतरिक्ष की अबूझ पहेलियों को बुझाने का प्रयास कर रहा है बल्कि धरती पर मानव जीवन को बेहतर बनाने के लिए जूझा हुआ है।

रंजन कु॰ 'यदुवंशी'
स्नातक–तृतीय वर्ष
हिन्दी विभाग
ए.एन.कॉलेज, पटना

इससे बेहतर कर दिखाएँगें, हौसले में कमी नहीं है
बस एक ख्वाब टूटा है, पर कोशिशें थकी नहीं है।

चाँद हमेशा से ही इंसान के लिए एक कौतूहल का विषय रहा है। इसे लेकर हमेशा से ही वैज्ञानिक और पूरी मानव जाति जिज्ञासु रही है। पृथ्वी के सबसे करीब और सबसे ठंडे इस उपग्रह को पृथ्वी से बाहर जीवन के लिए काफी उपयुक्त माना जा रहा है। यही वजह है कि अनेक देशों की अंतरिक्ष एजेंसियां समय–समय पर चांद पर अपने यान भेजती रही हैं।

भारत भी इस कार्य में पीछे नहीं है। भारत ने अंतरिक्ष में लगातार नई उपलब्धियाँ हासिल की है। पहले तमाम चुनौतियों को पार करता हुआ भारत आज अंतरिक्ष की दुनिया में काफी ऊंची छलांग लगाने के साथ ही वैश्विक स्तर पर अपनी पहचान बना चुका है। चन्द्रयान–1 की सफलता के बाद ही चन्द्रयान–2 की तैयारी हो गई थी। चन्द्रयान 2 मिशन न तो पूरी तरह सफल रहा और न ही विफल। इसलिये इस मुकाम पर जश्न मनाने का मौका नहीं मिला तो रोने धोने का भी कोई औचित्य नहीं है। हमारे वैज्ञानिकों को यह

समझाने या ढाड़स बांधने की भी कोई आवश्यकता नहीं कि विफलता से ही सफलता का मार्ग मिलता है, क्योंकि वे उसी वक्त नई राह तलाशने में जुट गये होंगे जन चन्द्रयान–2 चन्द्रमा की सतह से 2.1 किलो मीटर दुर रह गया और इसरो का उनसे संपर्क टूट गया। चन्द्रयान–2 दक्षिण ध्रुव पर उतरने वाला यान इससे पहले किसी भी देश ने अपने यान को इस ध्रुव पर भेजने का साहस नहीं जुटा पाया है। भारत ने यह चुनौती स्वीकार की और इससे बहुत कुछ सीखा।

विफलता पर सतीश धवन ने किया या उदाहरण पेश

विज्ञान प्रयोगों के आधार पर आगे बढ़ता है और प्रयोग जब विफल होते हैं तो विफलता के कारणों का पता लगाने से ही सफलता की राह मिलती है और यह सिलसिला आज से नहीं बल्कि मानव विकास के इतिहास के साथ सामानान्तर रूप से चल रहा है। भारत ने जब 19 अप्रैल 1975 को अपने ही वैज्ञानिको द्वारा तैयार पहले उपग्रह आर्यभट्ट को सोवियत संघ से उनकी ही मदद से प्रक्षेपित किया तो भारत के राजनीतिक नेतृत्व और उसके वैज्ञानिकों ने स्वयं अपने बलबूते अपने ही प्रक्षेपण स्थल से उपग्रह प्रक्षेपित करने का संकल्प लिया जिसे 10 अगस्त 1979 में पुरा करने की बारी आयी तो उपग्रह आसमान में जाने के बजाये बंगाल की खाड़ी में जा गिरा। इसे पृथ्वी की कक्षा में स्थापित किया जाना था लेकिन ईधन में लीकेज के कारण मिशन विफल हो गया।

इस मिशन के निर्देशक डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम थे और उस समय इसरो अध्यक्ष सतीश धवन थे। इस मिशन की विफलता की जिम्मेदारी अपने ऊपर ली और कहा ''इस मिशन में हम विफल हो गये हैं लेकिन मुझे अपनी टीम पर पुरा भरोसा है और अगली बार हम निश्चित रूप से कामयाब होंगे।'' इस विफलता के बावजूद डॉ. कलाम के नेतृत्व में ही मिशन जारी रहा और अन्ततः 18 जुलाई 1980 को भारत का पहला उपग्रह 'रोहिणी' भारत में निर्मित उपब्रह प्रक्षेपण यान (एसएलवी–3) से प्रक्षेपित कर पृथ्वी की कक्षा में सफलता पूर्वक स्थापित कर दिया गया। लेकिन इस ऐतिहासिक सफलता के अवसर प्रेस कॉन्फ्रेस के लिए सतीश धवन ने स्वयं आगे आने की बजाय डॉ. कलाम को आगे कर दिया। मतलब विफलता की जिम्मेदारी लेने वाले इसरो अध्यक्ष ने सफलता का श्रेय भी लेने के बजाय वह स्वर्णिम अवसर श्रेय के असली हकदार को देकर एक आदर्श नेतृत्व का उदाहरण वैज्ञानिक बिरादरी के समक्ष पेश कर भविष्य के लिए नई नजीर पेश कर दी।

इस मिशन के निर्देशक डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम थे और उस समय इसरो अध्यक्ष सतीश धवन थे। इस मिशन की विफलता की जिम्मेदारी अपने ऊपर ली और कहा ''इस मिशन में हम विफल हो गये हैं लेकिन मुझे अपनी टीम पर पुरा भरोसा है और अगली बार हम निश्चित रूप से कामयाब होंगे।''

सतीश धवन जैसे आदर्श नेतृत्व की जरूरत

डॉ. कलाम ने एक सम्मेलन में इस मौके पर कहा था कि किसी भी क्षेत्र में निजी स्वार्थो से परे नेतृत्व करने वाला अगर सतीश धवन जैसे हो तो सफलता स्वयं चल कर आ जाती है।

रोहिणी की विफलता ने खोले भारत के लिए अंतरिक्ष के द्वारा

रोहिणी भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) द्वारा शुरू की गई उपग्रहों की एक श्रृंखला थी जिसकी सफलता की शुरूआत रोहिणी प्रौद्योगिकी पेलोड (आर टी पी) की विफलता की बुनियाद पर हुयी। इसके बाद भारत को अंतरिक्ष में दौड़ने के लिए खुला आसमान मिला गया। इसरो द्वारा विकसित किये गए पांच प्रमोचन प्रक्षेपण यान एसएलवी–3 पीएसएलवी, जीएसएलवी, एसएलवी मार्क–3 जिसका दुसरा नाम एएलवीएम–3 है, अंतरिक्ष में सफलतापूर्वक अपने मिशन पूरे कर चुके हैं।

रूस–अमरीका को भी विफलताओं से ही राह मिली

4 जुलाई 1957 को दुनिया का पहला अंतरिक्ष यान प्रक्षेपित करने वाले सोवियत संघ और फिर 21 जुलाई 1969 को चांद पर अपोलो–11 के कमाण्डर नील आम्रस्ट्रांग में सफलताओं के झंडे गाड़ने से पहले कई बार विफलताओं का सामना करना पड़ा है।

चन्द्रयान–2 की इस हार में जीत भी है। ऑर्विटर भारत ने पहले भी पहुँचाया था लेकिन इस बार का ऑर्विटर ज्यादा आधुनिक है। चन्द्रयान–1 के ऑर्विटर से चन्द्रयान–2 का ऑर्विटर ज्यादा आधुनिक और साइंटिफिक उपकरणों से लैस है।

ऑर्विटर तो काम कर रहा है चांद पर पानी की खोज भारत का मुख्य लक्ष्य था और वो काम ऑर्विटर कर रहा है। भविष्य में इसका डेटा जरूर आएगा।

विज्ञान के श्रेय के हकदार केवल वैज्ञानिक

भारत का अंतरिक्ष कार्यक्रम नया नहीं है और हमारी सफलताएं तथा विफलताएं भी कार्यक्रम के साथ आगे बढ़ती रहती हैं। विज्ञान न केवल आसमान में नयी संभावनाएं तलाशने के साथ ही अंतरिक्ष की अबूझ पहेलियों को बुझाने का प्रयास कर रहा है बल्कि धरती पर मानव जीवन को बेहतर बनाने के लिए जूझा हुआ है। यही नहीं हमारा विज्ञान इतना स्वार्थी नहीं कि जो केवल मानव जाति के बारे में सोचे।

वह पशु–पक्षियों और पादप जगत के हित में भी निरंतर अनुसंधानो में जुड़ा हुआ है। इस महान बिरादरी के महान कार्यो का श्रेय छीन कर अपने सिर पर सजाने की प्रवृत्ति को भी प्रोत्साहित नहीं किया जाना चाहिए। अगर राजनीतिक नेतृत्व वैज्ञानिकों की सफलता का श्रेय अपने लिये सुरक्षित किये बिना नहीं रह सकता तो उस विफलता की जिम्मेदारी से भी नहीं बचना चाहिए।

भ्रमरगीत : प्रेम की एकान्वित अभिव्यक्ति

सूर की गोपियों के पास भोले–भाले तर्क हैं, जो निर्गुण का खण्डन करते हुए वातावरण को दार्शनिक–वैचारिक ना बनाकर भावात्मक बनाए रहती है। अतः प्रेम की एकान्वित अनुभूतियों को विरह–व्यथा के द्वारा उजागर करना ही 'भ्रमरगीत' का मुख्य उद्देश्य है।

ऋषिकेश मिश्र
स्नातक–तृतीय (2018–21)
ए.एन.कॉलेज, पटना

सूरदास का भ्रमरगीत, सूरसागर के भीतर का सार रत्न है। सूरसागर की सभी खण्ड कथाओं में कवित्व, भक्तिभाव एवं वाग्विदग्धता की दृष्टि से इसका स्थान सर्वोपरि है। भ्रमरगीत में जहाँ सूरदास की गोपियों का निर्गुण ब्रह्म के संबंध में प्रश्न पूछना और कृष्ण के प्रति अपने प्रेम के संबंध में ठोस तर्क प्रस्तुत करना उनकी वचन–वक्रता को दर्शाता है वहीं 'रागानुगा' भक्ति को दर्शाते हुए उनकी रागात्मक भावना का परिचय प्रस्तुत करता है।

दार्शनिक दृष्टि से भ्रमरगीत के प्रत्येक पात्र, स्थान और घटना अध्यात्मिक तथ्य का प्रतीक हैं। कृष्ण ब्रह्म हैं, गोपियाँ जीवात्माएँ हैं, गोपियों की विरह–वेदना ब्रह्म के लिए आत्मा की पुकार है और उद्धव उस ज्ञानाभिमान के प्रतिक हैं, जिससे पिछा छुड़ाकर ही ईश्वर को पाया जा सकता है।

सूर के भ्रमरगीत को दों दृष्टियों से देखा जा सकता है। पहला, यह भगवद्विषयक है और दूसरा यह वात्सल्य और श्रृंगार रस का प्रतिपादक है। यद्यपी पिछले दोनों रस भी कृष्णेन्मुख होने के कारण तत्वतः भागवत्प्रेम के अंतर्गत ही हैं, पर निरूपण–भेद और रचना–प्रवृत्ति के अनुसार वे अलग रखे गए हैं। भ्रमरगीत रचना का उद्देश्य यह है कि कृष्ण ने ज्ञानोपदेश द्वारा गोपियों को समझाने–बुझाने के लिए अपने सखा 'उद्धव' को ब्रज में भेजा। उद्धव को ही क्यों? कारण, उद्धव को अपने ज्ञान का बड़ा गर्व था, प्रेम या भक्ति की वे उपेक्षा करते थे। कृष्ण का उद्देश्य था कि वे प्रेम गूढ़ता और तन्मयता देखकर सगुण भक्ति–मार्ग की सरसता और सुगमता का समझ अपने ज्ञान–गर्व को दूर करें :–

बिरह–दुख जहँ नाहिं जामत, नाहिं उपजत प्रेम।
रेख, रूप न बरन जाके यह धरयो वह नेम।।
त्रिगुन तन करि लखत हमको, ब्रह्म गान और।
बिना गुन क्यों पुहुमि उधरें, यह करत मन डौर।।
प्रेम भजन न नेकु याके, जाय क्यों समझाय?
सूर प्रभु मन यहै आनी ब्रजही देहुँ पठाय।।

यह कहना स्थिति का सरलीकरण है कि 'भ्रमरगीत' निगुर्ण पर सगुण की विजय दिखलाने के लिए रचा गया है। दार्शनिक प्रतिपादन को लक्ष्य बनाकर या कथ्यों को तर्क–जाल में उलझाकर कोई भी महान रचना शायद नहीं रची जा सकती है। सूर जैसे संवेदनशील कवि से यह चूक होना की वह एक मार्मिक प्रसंग के लिए बौद्धिक जुगली कर सगुण और निगुर्ण का भेद करें, सही जान नहीं पड़ता। सूर की गोपियों के पास

भोले–भाले तर्क हैं, जो निर्गुण का खण्डन करते हुए वातावरण को दार्शनिक–वैचारिक ना बनाकर भावात्मक बनाए रहती है। अतः प्रेम की एकान्वित अनुभूतियों को विरह–व्यथा के द्वारा उजागर करना ही 'भ्रमरगीत' का मुख्य उद्देश्य है। निगुर्ण और सगुण का विवाद कवि के लिए बस इतना महत्व रखता है कि निर्गुण कठिन मार्ग है और सगुण अपेक्षाकृत सरल –

''सब विधि अगम विचारहिं तातै,
सूर सगुण लीला–पद गवै।''

उपनिषद् काल से ही भारतीय दर्शन में ज्ञान और भक्ति का संघर्ष देखने को मिलता है। भक्ति–काल में यह संघर्ष और भी तेज हो गया। 'वल्लभाचार्य' ने 'अणुभाष्य' में कहा ''यदि ज्ञान सरसों है तो भक्ति सुमेरू पर्वत''। धार्मिक संघर्ष की इसी आधार पर सूर के 'भ्रमरगीत' का दार्शनिक महत्त्व है। उसमें गोपियाँ अपने प्रेम को श्रेष्ठ बताने के लिए ज्ञान योग एवं ब्रह्म के निर्गुण स्वरूप की उलाहना करती है।

गोपियाँ निराकार को अस्वीकार करती हुई जो तर्क देती हैं वे भी भावना से ओतप्रोत हैं। व्यंग्य–कटाक्ष एवं निर्गुण के निषेध द्वारा भी वे अपनी प्रेम–व्यथा का ही इजहार करती हैं। वे उद्धव से संतुष्ट नहीं होती। यदि कृष्ण निराकार हैं तो लीलाएँ किसने की? वे पूछती है : निर्गुण किस देश का रहने वाला है? उसके माता–पिता एवं पत्नी के नाम क्या है?

''निर्गुण कौन देश को बासी?
को है जनक, जननी को कहियत, कौन नारी को दासी,
कैसो बरन, भेस है कैसो, केहि रस में अभिलासी।।''

गोपियों की दृष्टि से निराकार तो मन का लड्डू है, उससे भूख नहीं मिट सकती। यदि भक्ति असली दूध है तो ज्ञान खारे कुएँ का पानी, यदि भक्ति सोना है तो ज्ञान भुस्सी है :–

''जाकों मोक्ष विचारत बरनत, निगम कहत हैं नेति।
सूर स्याम तिन को भुस फस्वै, मधुप तुम्हारे हेति।।''

ज्ञान चंचल है, भक्ति स्थिर। भक्ति मन का विषय है ज्ञान तर्क का। मन जिससे लग जाता है तर्क उसे हटा नहीं सकता। इसलिए गोपियाँ उद्धव के तर्क के सामने अपना हृदय रख देती है।

''मन में रह्यौ नाहिं न ठौर।
नंद–नंदन अक्षत कैसे अनियै उर और।।''

यहाँ ज्ञान और योग का जादू नहीं चल सकता। वे कहती हैं कि तुम्हारा निराकार ब्रह्म भी हमें स्वीकार्य

है, यदि इसके माध्यम से कृष्ण हमें मिल जाय। गोपियाँ तो कृष्ण रूपी डोर के साथ घूमने वाली लट्टू हैं। वे भला योग क्यूँ सिखें?

''उधौ हमहीं न जोग सिखैये।
जिहि उपदेश मिलैं हरि हमको, सो ब्रत नेम बतैये।।''

'भ्रमरगीत' में, 'स्याम् मुख देख ही परतीत वाली गोपियों के समक्ष उद्धव का ज्ञान–गर्व धाराशायी हो जाता है। विरह के कारण उनकी आँखों से जो अश्रु की धारा फूटती है, उसमें उद्धव का ज्ञान योग तिनके की तरह बह गया है। उद्धव गोपियों की प्रेम–भक्ति को देख सहज हो जाते हैं। मथुरा लौट कर ये कहते हैं:

''अब अति पंगु भयो मन मेरो,
गयो तहाँ निर्गुण कहिबे को, भये सगुण के चेरो।।''

भ्रमरगीत में गोपियों की भावना का केंद्रीय बिन्दु उनकी प्रेम–भक्ति हैं, निराकार का खण्डन उनका लक्ष्य नहीं है। इसलिए दार्शनिक निष्पत्तियाँ कवि का मुख्य प्रयोजन नहीं है। यहाँ दर्शन भाव–भूमि का अंग बनकर आया है, मुख्य जोर तो प्रेम अनुभूति पर है।

◉

स्थितां सत्येन धरणी सत्ये नैव च वारिधिः।
सत्येन जलधाराश्च सत्ये सर्व प्रतिष्ठितम्।।

अर्थात सत्य पर ही धरती टिकी है, समुद्र भी सत्य के कारण ही अपनी मर्यादा में स्थित है और सत्य के कारण ही सभी जलधाराओं में जल है। सत्य में ही सब कुछ स्थित और प्रतिष्ठित है।

आधुनिकता की तपिश में झुलसता गाँव...!

यशवंत यादव
स्नातक–द्वितीय वर्ष, हिन्दी विभाग
ए.एन.कॉलेज, पटना

''शहर बसाकर अब सुकून के लिए गाँव ढूंढते हैं!
बड़े अजीब हैं ये लोग, हाथ में कुल्हाड़ी लेकर
छाँव ढूँढते हैं!!''

जी हाँ! आज मैं इसी पंक्ति के साथ इस आलेख में आपके साथ समीक्षा करूंगा, दिए गए शीर्षक 'आधुनिकता की आग में झुलसता गाँव' पर! हर सिक्के के दो पहलू होते हैं, और यहाँ भी आधुनिकता के दो पहलू हैं। एक गुण और दूसरा अवगुण, सर्वप्रथम मैं गुण को यानी कि प्रथम पहलू को साथ लेकर चलूँगा...।

भारत की 'आत्मा और हृदय'' गाँवों में बसता है। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि भारत की लगभग – 70 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में रहती हैं। लेकिन पिछले कुछ दशकों से भारतीय गाँवों की स्थिति में आमूल परिवर्तन–रूपान्तरण दृष्टिगत होता है। यह रूपान्तरण अपने में कुछ गुणों को और वहीं कुछ अवगुणों को लिए हुए हैं। इस तीव्र गति से परिवर्तन का मुख्य श्रेय आधुनिक तकनीक को जाता है। भारतीय गाँवों के जीवन तंत्र में आधुनिक तकनीक की सहायता से कृषि के तरीकों में क्रांतिकारी परिवर्तन आ गया है। किसानों में इनकी उपयोगिता को लेकर जिज्ञासा भी बढ़ी है और ग्रामीण परम्परा में चले आ रहे यंत्रो को छोड़ नए कृषि यंत्रों और उत्पादन प्रणालियों का प्रयोग प्रारंभ कर दिया है। इससे औसत भारतीय किसान के जीवन स्तर में उन्नति हुई है। कृषि में यंत्रों के प्रवेश से किसानों में शारीरिक श्रम का भार कम हो गया है तथा अतिरिक्त आय प्राप्ति के लिए उसने अन्य प्रकार के श्रम की ओर ध्यान केन्द्रित करना प्रारंभ कर दिया है, विस्तृत कृषि, गहन कृषि, मिश्रित कृषि स्थानांतरित कृषि और 'हरित क्रांति' के कारण विश्व पटल पर भारतीय किसानों की छवि सम्माननीय बन गई है।

आधुनिकता का दौर, बदलते गाँव.....!

अब मैं आपको इस आलेख के दूसरे पहलू से अवगत कराने की कोशिश करूंगा.....।

जब भी गाँव की बात चलती है, तो एक सुकून भरा, शांत, सहज, सादगीपूर्ण जीवन का आभास मन में उभर जाता है। हरे–भरे खेत, हल जोतते किसान, मवेशियों के गले में टुनकती घंटी, चौपाल पर हुक्के की गुड़गुड़ में बतियाते बुजुर्गों के दृश्य साकार होने लगते हैं। पर हकीकत यह है कि गांव अब बदल गए हैं।

आधुनिक तकनीक और जीवन–शैली की धमक वहाँ साफ सुनाई देने लगी है खेत–खलिहानों में राग–रागिनियां गाते किसान, कच्ची मिट्टी के घर और झोपड़ियां, ऊबड़–खाबड़ धूल–धुसरित सड़कें, हौले–हौले चलती बैलगाड़ियां, पेड़ की ठंडी छांव में जमी चौपालें, पनघट पर पानी भरती महिलाएं और मिट्टी में खेलते छोटे–छोटे नंग–धड़ंग बच्चे। पहले कहीं भी गांव का जिक्र चलते ही ये सभी दृश्य अनायास ही हमारे दृष्टिपटल पर अंकित हो जाते थे। लेकिन आज गांवों की यह तस्वीर बदल रही हैं खेत–खलिहानों और गांवों की गलियों में अब रागिनियां सुनाई नहीं पड़ती हैं। रागिनियों का स्थान अब फिल्मों के आधुनिक गीत–गानों ने ले लिया है। कच्ची मिट्टी के घर पक्के मकानों में तब्दील हो रहे हैं। हौले–हौले चलती बैलगाड़ियां भी अब कम ही दिखाई देती हैं। बैलगाड़ियों का स्थान अब बुग्गी और ट्रैक्टर ले चुके हैं। गांव की चौपालें अब फीकी पड़ने लगी है कहते हैं समय की मार से कोई नहीं बच सका, फिर चाहे तो ग्रामीण परिवेश ही क्यों ना हो, आधुनिकता का प्रभाव गांवों में भी रूप से देखा जा सकता है।

'धुंधलाती ग्रामीण संस्कृति'

पहले गांव की अपनी एक अलग संस्कृति थी। दिल को सुकून देने वाली न जाने कितनी चीजें हुआ करती थीं। सुख–शांति, स्वस्थ प्राकृतिक वातावरण और सहकारिता की भावना, सभी कुछ तो था गाँव में। बुजुर्ग ग्रामीण आज भी गांवों में आतिथ्य सत्कार करना अपना धर्म मानते हैं, परंतु अब वो भी आधुनिकता की आँधी में धूमिल होता जा रहा है।

जब कभी गांवों में कोई बारात आती थी, तो वह पूरे गांव की बारात होती थी। गांव के सभी लोग बारात का आतिथ्य सत्कार करना अपना धर्म मानते थे। लेकिन यह आज बीते जमाने की बात हो गई है। पहले एक घर का मेहमान पूरे गांव का मेहमान होता था। अगर कोई नया मेहमान गांव में आता था तो गांव के लोग स्वयं उसके साथ चल कर उसे गन्तव्य तक पहुंचाते थे। हालांकि गांव की इस परंपरा मे पहले की अपेक्षा थोड़ा परिवर्तन तो अवश्य हुआ है, लेकिन आज भी गांवों में यह परंपरा काफी हद तक विद्यमान है। पहले शहर के बड़े–बड़े क्लब गांव की चौपाल के सामने फीके थे। गांवों की चौपालों में शहर के क्लबों की तरह इत्र की मादकता तो नहीं बिखरती थी, लेकिन वहां माटी की सौंधी गंध अवश्य बिखरती थी। जुड़ा होने का अहसास कराती थी। गांव की चौपाल में बैठ कर एक अजीब सी शांति का अनुभव होता था। चौपाल में शहर के क्लबों की तरह दिखावटी तौर–तरीके नहीं थे। लेकिन वहां जीवन से जुड़ी अन्य बहुत सी बाते सिखाई जाती थीं। वहां जो भी कुछ था, वह दिखावटी और बनावटी नहीं था। अक्सर गांव के चौपालों में एक ही हुक्का रखा रहता था। सभी लोग बारी–बारी से एक ही हुक्के से अपना काम चला लेते थे। सबके मुंह लगे एक ही हुक्के की गुड़गुड़ाहट से सहकारिता का संगीत सुनाई देता था। ऐसा नहीं कि पहले गांवों में ईर्ष्या, द्वेष और गंदी राजनीति का कोई स्थान नहीं था। गांवों में ये सभी विसंगतियां पहले भी मौजूद थीं। लेकिन आज की तरह इनका स्वरूप विकृत और घिनौना नहीं था। आज ग्रामीण पीढ़ी में नए फैशन को अपनाने की होड़ लगी है। पहले गांव का वातावरण स्वच्छ था, क्योंकि दूर–दूर तक कारखाने नहीं थे। आज औद्योगीकरण के चलते जंगलों और खेतों में बड़ी संख्या में कारखाने स्थापित हो रहे हैं। फलस्वरूप गांव का वातावरण भी अब पहले जैसा स्वच्छ नहीं रहा। व्यावसायिकता और आपाधपी के इस दौर में शांति का पर्याय माने जाने वाले गांवों में भी विभिन्न अपराधों ने अपने पैर पसार लिए हैं।

अभी तक हमने देखा की किस तरह की आधुनिकता की बयार में ग्रामीण संस्कृति और सभ्यता की जड़े

कमजोर पड़ती जा रही है। वहीं अगर हम इस बयार में भारतीय कृषक की बात करें तो, एक अत्यंत पुरानी कहावत है : 'भारतीय संस्कृति उसकी कृषि से जानी जाती है।' भारत वैदिककाल से ही एक कृषि प्रधान देश रहा है। भारत की अधिकांश जनता गाँवों में निवास करती है और कृषि करती है। गाँवों में ही सेवा और परिश्रम के अवतार किसान बसते हैं। ये किसान ही नगरवासियों के अन्नदाता हैं, सृष्टिपालक हैं। ''गांवों की उन्नति से ही भारत की उन्नति हो सकती है।'' गांधी जी के ये बात अक्षरशः सत्य हैं।

कृषक के जीवन की झांकी निम्न पंक्तियों से दृष्टिगोचर होती है।

''हैं धास फूस की झोपड़ियाँ, इनमें जीवन पलता है।
दिन रात परिश्रम में पिसता, टुकड़ों में मानव पलता है।''

'गाँव भला या शहर' जवाब दे पाना काफी कठिन है, क्योंकि सभी के अपने–अपने विचार हैं। पर हाँ! मैं अपना मंतव्य आपके साथ जरूर साझा करूंगा। मिट्टी की सोंधी–सोंधी खुशबू, हरे–हरे पौधों के बीच में अपने सिर उठाए सरसों के पीले फूल व पलाश के फूलों की लाली देखकर लगता है मानों धरती ने हरे वस्त्रों पर पीली चुनरिया ओढ़कर माँग में लाल सिंदुर भर लिया हो। मंद–मंद बहती हुई स्वच्छ वायु हृदय को प्रफुल्लित कर देती है। गाँव के नैसर्गिक सौंदर्य पर रीझकर सहृदय बराबर कह उठता है–

''अहा! ग्राम्य जीवन भी क्या है, ऐसी सुख शांति व सुंदरता और कहाँ है?''

गाँव का जीवन सरल, सादा व कम खर्च में निर्वाह–योग्य है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि यदि शहर देश का तन है तो गाँव उसकी आत्मा। दोनों का अस्तित्व एक–दूसरे के बिना संभव नहीं और अब अंत में, कलम की आख़िरी स्याही से एक पंक्ति लिख रहा हूँ–

'मैंने देखा है थोड़ा सा शहर घुस रहा है गाँव में!
कोई कर रहा है छेद नाव में!!
वातानुकूलित (AC) कि कमी गिना रहा है पीपल की छाँव में,
पहिया पलायन का बाँध लिया है पाँव में!!'

'देश की तरक्की का रास्ता गांवों के खेतों एवं खलिहानों से होकर गुजरता है : **चौधरी चरण सिंह**

शिक्षा

प्यारे बच्चों पढ़ो–पढ़ो कुछ,
जीवन में तुम गढ़ो, गढ़ो कुछ
समय नहीं फिर मिल पायेगा,
जीवन असफल हो जायेगा
सीखो तुम कुछ करना श्रम,
जो भी कर लो समझो कम
पूरा जग हो तुमसे नीचा,
ऐसा कार्य करो तुम ऊँचा
पढ़ लिख कर बनो विद्वान,
दूर–दूर तक होवे सम्मान
ऐसी पूँजी है यह शिक्षा,
कभी मांगनी पड़े ना भिक्षा
बढ़ जाता है इससे ज्ञान,
नत–मस्तक होता अज्ञान
दूर करो मन का अँधियारा,
फिर लाओ इस जग में उजियारा

• **शालिनी कुमारी**
बी.एड (शिक्षा विभाग)
क्र॰–49, सत्र : 2020–22
ए.एन.कॉलेज, पटना

यादें!

था बना मिट्टी से मिट्टी हो गया!
आँख का तारा गगन मे खो गया!!

तोड़ कर बंधन जनम का प्रीत का!
नीद में चिरकाल को वो सो गया!!

हर जिगर तड़पेगा अब उसके लिए!
हर नजर उसके लिए है रो गया!!

खाक बनकर बह गया गंगा में खुद!
आँसुओं से सबका मुखड़ा धो गया!!

आँखों से बह गया गंगा–यमुना की धारा!
अब हमेशा के लिए यादों में रह गया!!

ले गया बचपन हमारा यार वो!
कील यादों के दिलों में बो गया!!

जानें क्या जल्दी थी उसको जाने की!
क्यूं अकेले दर्द सारा ढो गया!!

• **सुरभि कुमारी**
क्र॰–40,
बी.एड–प्रथम वर्ष (2020–22)
ए.एन.कॉलेज, पटना

एन कॉलेज ने रचा इतिहास
शुरू हुई ऑनलाइन पढ़ाई
एन कॉलेज देगा ऑनलाइन पाठ्य सामग्री
एन कॉलेज में ऑनलाइन कक्षा का संचालन शुरू
एन कॉलेज में बनेगा बहुद्देशीय भवन
MULTIPURPOSE BHAWAN INAUGRATED IN A.M. COLLEGE
शिक्षण संस्थानों से ऑनलाइन
शिक्षण पर सरकार का बल

दैनिक भास्कर, 12.01.2021,
देश के समग्र विकास में स्थानीय स्वशासन की महत्वपूर्ण भूमिका

सहकारिता से ही समाज का विकास संभव : प्रो. रंजीत

देश के समग्र विकास में स्थानीय स्वशासन की महत्वपूर्ण भूमिका

बोरिंग रोड में यू-टर्न और गोलंबर बनेंगे

आज, 01.02.2021, पेज नं0–05
प्रथम चरण में जहानाबाद, गया के लिए चलेंगी 20 बसें

बोरिंग रोड में जाम से निपटने के लिए बनेगा ट्रैफिक प्लान

बोरिंग रोड में जाम से निजात के लिए एएन कॉलेज के पास बनेगा यू-टर्न या गोलंबर

हिन्दुस्तान, 18.02.2021, पेज नं0–8
छात्रों के लिए हो रहा बेहतर कार्य : प्रधान सचिव

कॉलेजों में शिक्षक नियुक्ति इसी साल होगी पूरी, भेजा गया प्रस्ताव : प्रधान सचिव

सन्मार्ग, 18.02.2021, पेज नं0 4
छात्रों के समग्र विकास के लिए नैक मान्यता जरूरी : प्रधान सचिव

शिक्षकों की नियुक्ति शिक्षा विभाग की प्राथमिकता : प्रधान सचिव

विकास में स्थानीय स्वशासन की महत्वपूर्ण भूमिका

राष्ट्रीय सहारा, 23.02.2021, पेज नं0–4
सहकारिता से समाज व संस्थान का विकास संभव

राष्ट्रीय सहारा, 12.01.2021, पेज नं0–4
देश के समग्र विकास में स्थानीय स्वशासन की भूमिका म...

पानी की शुद्धता के लिए होंगे उपाय

दैनिक भास्कर, 23.02.2021, पेज नं0 04
सहकारिता से संभव है समाज और संस्थान का विकास

2021

एएन कॉलेज देश का 41वां सर्वश्रेष्ठ कॉलेज

एएन कॉलेज को विज्ञान संकाय में मिला राज्य में पहला और देश में 41वां स्थान

प्रभात खबर, 27.08.2020, पेज नं0–11

एएन कॉलेज में फैकल्टी डेवलपमेंट प्रोग्राम शुरू

एएन कॉलेज में फैकल्टी डेवलपमेंट प्रोग्राम

एएन कॉलेज को ओवरऑल रैंकिंग में 41वां स्थान

प्रभात खबर, 31.07.2020, पेज नं0–9

कोरोना की वजह से तकनीक हो रहा बेहतर

पटना. एएन कॉलेज पटना के आइक्यूएसी तथा भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद के सहयोग से 'तकनीक तथा सतत विकास: कोविड के दौरान आगे का मार्ग' विषय पर दो दिवसीय राष्ट्रीय वेबिनार गुरुवार को संपन्न हुआ. इस राष्ट्रीय वेबिनार के तकनीकी सत्रों में देश भर विभिन्न विश्वविद्यालयों के शिक्षकों तथा शोधार्थियों ने अपने शोध पत्र प्रस्तुत किये. मौके पर सूचना एवं प्रौद्योगिकी विभाग, बिहार के ...

इंडिया टुडे ग्रुप रैंकिंग में ए एन कॉलेज को बिहार में पहला स्थान

जरूरतों को ऐसे पूरा करें ताकि भावी पीढ़ी परेशान न हो: निखिल

15 दिवसीय फैकल्टी डेवलपमेंट प्रोग्राम शुरू

सघन आबादी वाले देशों में कोरोना का असर कम रहा

आज, 30.07.2020, पेज नं0–5

हर स्तर पर हो पर्यावरण की पढ़ाई : निखिल

पटना के दो कॉलेजों का देश में परचम

अधिकांश युवा उच्च शिक्षा से दूर

सबसे युवा आबादी वाले राज्य में राष्ट्रीय औसत के एक चौथाई कॉलेज ही उपलब्ध

तकनीक तथा सतत विकास पर दो दिवसीय राष्ट्रीय वेबिनार की शुरुआत

अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति ऐसे करें कि भावी पीढ़ी को न करना पड़े समझौता

यूनिवर्सिटी-कॉलेजों में शिक्षकों की नियुक्ति इसी साल

आर्सेनिक प्रदूषण से 300 मिलियन लोग प्रभावित

व्याख्यानमाला

तकनीक का हो रहा बेहतर उपयोग

वेबिनार : दुनिया के 30 करोड़ लोगों को प्रभावित कर रहा आर्सेनिक प्रदूषण

'बुद्धिमान लोग हैं विश्व के सबसे बड़े संसाधन'

एएन कॉलेज में स्टूडेंट डेवलपमेंट प्रोग्राम शुरू

भारतीय संस्कृति को देखने का नजरिया बदला

यूरोप, एशियाई देशों के लोगों को तुच्छ समझता था : बिंदा

महामारी का व्यक्तिगत अध्ययन भी है जरूरी

एएन कॉलेज में लर्निंग फ्रॉम पोस्ट एपिडेमिक्स पर वेबिनार

किसी भी महामारी के व्यक्तिगत प्रभावों का अध्ययन करना जरूरी

वेबिनार में हुई महामारी पर चर्चा

बिना टच किये ध्वनि तरंगों से किये जा सकते हैं कई काम

साउंड वेब से डेटा ट्रांसफर आसान

पर्यावरण संरक्षण के प्रति लोगों में बढ़ी है सजगता

एएन कॉलेज में फैकल्टी डेवलपमेंट प्रोग्राम आज से

सिर्फ विज्ञान पढ़ाने का नहीं, वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास का हो प्रयास

स्थानीय उत्पादों के उपयोग को बढ़ावा दें : सुमो

एएन कॉलेज में वेबिनार आयोजित

चरित्र निर्माण व व्यक्ति विकास एक सिक्के के दो पहलू

आत्म तत्व का व्यक्त रूप व्यक्ति है : अतुल कोठारी

विश्व के 300 मिलियन लोग आर्सेनिक प्रदूषण से प्रभावित

डिस्टेंस एजुकेशन से जुड़े 57 लाख

जल्द ही आर्सेनिक पर रिसर्च के लिए मिलेगा स्कॉलरशिप

स्थानीय उत्पादों को मिले तरजीह

बिहार के विकास में अनुग्रह बाबू का बड़ा योगदान

छात्रों को उपलब्ध कराया जायेगा टैब : मोदी

नियमित रूप से क्लास करें छात्र : प्रो शाही
राष्ट्रीय विज्ञान दिवस पर आयोजित भाषण प्रतियोगिता में निशांत प्रथम
जो भी मैं लिखता हूं, वह कविता हो जाती है...
मजदूर आंदोलन से उपजा अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस
एएन कॉलेज में सांस्कृतिक प्रशिक्षण कोर्स के लिए एमओयू पर हस्ताक्षर
अनुशासन में रह कर करेंगे पढ़ाई
एएन कॉलेज में होगी जैपनीज कोर्स की पढ़ाई
जापानी भाषा की भी होगी पढ़ाई
निशांत अव्वल, सुमन दूसरे स्थान पर
जिंदगी अभिशाप भी, वरदान भी
संयुक्त इंडक्शन मीट
इंडक्शन मीट का आयोजन
एएन कॉलेज में जापानी भाषा का कोर्स चलेगा
अभी तो हसरत नई-नई है...
स्टूडेंट्स को पढ़ाया गया अनुशासन का पाठ
अनुशासित होकर करें नियमित क्लास
छात्रों को अनुशासित रहने की दिलायी शपथ
प्रतियोगिता से बढ़ती है एकाग्रता
युवाओं के सामने जितनी चुनौतियां उतने ही अवसर भी : प्रो गिरीश
वर्तमान समय में भारतीय महिला सभी क्षेत्रों में बेहतर प्रदर्शन कर रही
एएन कॉलेज में एमबीए-एमसीए की इंडक्शन मीट
एक बार और जाल फेंक रे मछेरे...
बिहार दिवस पर एएन कॉलेज में बुद्धिनाथ मिश्र का व्याख्यान

विकास के 'नीतीश मॉडल' को दुनिया ने सराहा
एएन कॉलेज में हुआ पुस्तक का लोकार्पण
एएन कॉलेज में राष्ट्रीय वेबिनार
'हिंदी हमारी मां है,
हिंदी का मुद्दा केवल भाषा का ही नहीं राष्ट्र की अस्मिता व एकता का सवाल
बिहार के समग्र विकास पर लिखी पुस्तक का लोकार्पण
कामेश्वर झा की पुस्तक में 'बिहार का विकास'
Local investments key to growth
विकास में उद्यमिता की संस्कृति का विशेष योगदानः प्रो. मिश्रा
हिंदी को आज भी वह सम्मान नहीं मिलता

पटना

WORLD WILDLIFE DA

The Master's
A.N. College, Patna

Science Day

Science Day

A. N. COLLEGE Patna

Established-1956

Prof. S. P. Shahi
Principal

Quality Education is Our Motto

❖ No. of Buildings	:	16 in a sprawling campus
❖ P.G. Teaching	:	23 Subjects
❖ U.G. Teaching	:	24 Subjects
❖ Conventional Courses	:	Science, Social Science & Arts
❖ Vocational & Professional Courses	:	BBM, MBA, BCA, MCA, Electronics Biotechnology, EWM, IT, BLIS & B.Ed.
❖ Laboratories	:	Well equipped
❖ Total No. of Computers	:	Above 400

A Mark of Quality Education

A Constituent Unit of Patliputra University

NAAC
NATIONAL ASSESSMENT AND ACCREDITATION COUNCIL

Grade - 'A'
(3rd Cycle) with CGPA 3.27/4
Accredited by NAAC

CPE Status Accorded by UGC

MBA & MCA Approved by AICTE

Special Features

- Constituent Unit of Patliputra University, Patna
- College with Potential for Excellence status (CPE) by UGC
- Accredited by NAAC with Grade "A" (3rd Cycle with CGPA 3.27/4)
- Sprawling campus in 13 Acres
- State of Art Infrastructure
- Separate Academic Blocks
- Administrative Building and Examination Hall
- Well Equipped Laboratories and spacious Classrooms
- Well stocked Library running on INFLIBNET Soul 2.0 Software
- Each Department has Seminar Library and Smart Class facilities
- Well qualified and experienced teaching faculty
- Good Research Culture
- Experienced and cooperative staff
- Excellent Academic Results and Healthy Academic Environment
- Playground, Badmintion Court and Gymnasium
- Well-equipped Language Laboratory
- Leacture organized under the S.N. Sinha Memorial Lecture Series
- REgular Campus Selection under Placement & Guidance Cell
- Academic, Cultural and Research Collaboration at International level
- Wi-Fi Connectivity in Campus
- Excellent performance in terms of community service through NSS unit
- Girls Common Room, facilities of Sanitary Pad Vending Machine with Incinerator
- Cafeteria and Health Centre faclities available
- Provision of Ramp for differently abled persons in each building

Design & Print @ Gyan Ganga Creations # 09334110685

ए.एन. कॉलेज, पटना

तृतीय चक्र, श्रेणी 'ए' – राष्ट्रीय मूल्यांकन एवं प्रत्यायन परिषद् (नैक) द्वारा पुनर्मूल्यांकित
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यु.जी.सी.) द्वारा 'विशिष्ट' महाविद्यालय के रूप में रेखांकित
पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना